# आदर्श चरित्रम्

ॐ अर्हम् नमः

# आदर्श चरितम्

संग्राहक—

पंडित मुनि श्री सुखलालजी महाराज

लेखक—

कवि गुलाबशङ्कर बोरा,

काव्यपञ्चानन, काव्यचूडामणि, काव्यतीर्थ

रतलाम।

संशोधक एवं परिवर्धक—

पं० बाबूराम जैन शास्त्री,

साहित्याचार्य, साहित्य चक्रवर्ती

देहली।


प्रकाशक—

श्रीमति लाडबाई,

धर्मपत्नि स्व० ला० लोटनमलजी जैन, जौहरी,

मालीवाड़ा, देहली।

प्रथमावृत्ति ५००

वीराब्द २४६६

विक्रमाब्द १९९५

प्रकाशक—
श्रीमति लाड़बाई,
धर्मपत्नि स्व० ला० लोटनमलजी जैन, जौहरी,
मालीवाड़ा, देहली ।

नोट—इस पुस्तक में जल्दी के कारण संशोधन में कुछ गलतियां रही हों तो पाठकगण सुधार कर पढ लेवें ।



चिरंजीव बाबू सूरजमल जी सुजन्ती और उनके पूज्य पिता
धर्म-प्रेमी स्वर्गीय लाला लोटनमल जी जैन जौहरी
माली वाड़ा देहली -

# निवेदन

आजका कितना सौन्दर्यसमय है कि हमारे असीम पुण्योदय से इस देहली क्षेत्र में शास्त्रज्ञ धैर्यवान परम प्रतापी पूज्यश्री खूब चन्दजी महाराज एवं श्री जैन दिवाकर जी प्रसिद्धवक्ता पं० मुनिश्री चौथमलजी म० ने ठाने १५ से सं० १९९५ का चातुर्मास किया। दोनों प्रतापी महापुरुषों का सम्मिलित चातुर्मास होना यह पहला ही अभूतपूर्व सुअवसर है और इसी वर्ष सोने में सुगन्ध वाली कहावत के अनुसार भारतप्रसिद्ध श्रीमती परम विदुषी सती जी श्री पार्वती जी म० की आज्ञानुवर्ती श्रीमति विदुषी सतीजी श्री चन्दा जी म० ठा ५ एवं श्रीमती पन्नादेवीजी ठा० ७ से चातुर्मास किया पूज्य श्री एवं जैन दिवाकरजी के उपदेशों से जनता ने काफी लाभ उठाया। इस चातुर्मास की यादगार में बाबू सूरजमलजी जैन सुजंती की मातेश्वरी धर्म परायण श्रीमती लाडबाई ने इस आदर्श चारित्र की ५०० प्रति प्रकाशित कराकर जनता के कर-कमलों में भेंट दी है अतएव श्रीमतीजी धन्यवाद की पात्र हैं।

निवेदक—

**द्वारका प्रशाद जैन,**

फर्म श्री महावीर जैन भण्डार,

मालीवाड़ा देहली।

# आभार-प्रदर्शन

शास्त्र-विशारद प्रवर्तक पं० मुनिश्री १००८ श्री हजारीमलजी म०, मनोहर व्याख्यानी पं० मुनिश्री १००८ श्री सुख मुनिजी म० और प्रिय व्याख्यानी श्री हीरालालजी म० के हम अतीव आभारी हैं, कि जिनकी असीम कृपा से यह आदर्श चरितम् हमें प्राप्त हुआ है।

प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हीरालालजी महाराज को भी हम हार्दिक धन्यवाद देना कभी नहीं भूल सकते, कि जिनके सद्‌बोध से प्रेरित होकर हम इस चरित को प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं।

अन्त में हम यह कहे बिना नहीं रहेंगे, कि इस आदर्श चरितम की हिन्दी भाषा के संशोधन तथा प्रूफ रीडिंग में उत्साही युवक श्री० दीपचन्दजी सुराना गंगधार (झालावाड़) निवासी ने पर्याप्त परिश्रम किया है। और इसके तिरंगे तथा सादे ब्लाकों की डिजाइन, प्रिंटिङ्ग आदि कार्यों में देहली निवासी उत्साही बन्धु श्री द्वारका प्रसादजी जैन ने काफी दौड़ धूप की है। इसके लिए हम उपरोक्त दोनों महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद समर्पण करते हुए उनके प्रति आभार प्रदर्शन करते हैं।

निवेदकः—

बा० सूरजमल जैन, सजंति,

मालिक फर्म ला० छोटनमल सूरजमल,

मालीवाड़ा, देहली।

# ❀ प्रस्तावना ❀

संसार का यह नियम है कि वह जीवन की पवित्रता को धार्मिकता और आचरणहीनता को सांसारिकता समझता है। पाश्चात्य विचारों में तो इसी सिद्धान्त पर विशेष रूप से बल दिया गया है। भारत में राजनीति को धर्म का अंग मान कर उसमें शुभ आचरण की कुछ अनिवार्यता करदी गई है तो यूरोप में उसको धर्म से बिलकुल प्रथक् करके उसका धार्मिकता से एक दम सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया है। यूरोपीय राजनीति में प्रतिज्ञा करना, राष्ट्रहित के नाम पर की हुई प्रतिज्ञा को तोड़ना, निराश्रित नागरिकों पर बम बरसाना एवं सभी प्रकार की आचरणहीनता क्षम्य है। भारत में यद्यपि राजनीति धर्म का अंग थी, किन्तु आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य ने राजनीति में कुटिलता का समावेश करके उसको बहुत कुछ आजकल की राजनी[illegible] जामा पहिनाने का यत्न किया था। इसीलिये भारतीय [illegible]

ने उनको कौटिल्य नाम दिया था। किन्तु जैन नीतिकारों ने जैन धर्म के धर्मप्रधान होने के कारण कौटिल्य की इस व्याख्या को कभी स्वीकार नहीं किया और वह बराबर आचरणशुद्धि पर ज़ोर देते रहे।

आज भारतवर्ष ने संसार के सन्मुख अपने उस प्राचीन सिद्धान्त को फिर व्यवहारिक रूप में उपस्थित किया है। महात्मा गांधी ने धर्म को राजनीति से प्रथक् रखते हुए भी राजनीति में आचरण शुद्धि को अनिवार्य बतलाया है। जिस समय महात्मा गांधी ने अहिंसा द्वारा भारत को स्वतंत्र करने का आंदोलन आरंभ किया तो उस समय अनेक राजनीतिज्ञों ने उनकी हंसी उड़ाई, कई एक ने तो उनको निर्बल एवं कायर तक कह डाला। किन्तु उन्होंने आलोचकों की कोई चिन्ता न करके यह भी घोषणा की कि अहिंसामयी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिये यह आवश्यक एवं अनिवार्य है कि वह मन, वचन और कर्म से पूर्ण अहिंसक बना रहे और सब प्रकार के सांसारिक प्रलोभनों से बचता हुआ पूर्णतया सदाचारी हो। आज संसार इस बात को जानता है कि महात्मा गांधी पूर्णतया व्यवहारिक एवं सफल प्रमाणित हुए, जब कि उनके आलोचक अव्यवहारिक एवं असफल प्रमाणित हुए। यद्यपि आजकल कांग्रेस आरामतलब एवं समयसाधु (मिले हुए अवसर से लाभ उठाने वाले) पुरुषों से भर गई है, किन्तु महात्मा गांधी फिर भी आचरण शुद्धि पर बल देते हुए उसमें से आचरणहीन

व्यक्तियों को निकाल देने की योजना बना रहे हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि आचरण शुद्धि लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, राजनीतिक अथवा व्यवहारिक सभी प्रकार के जीवन में आवश्यक है। अपने जीवन को पवित्र बनाने का सब से सुगम उपाय है पवित्र जीवन वाले महापुरुषों की जीवन गाथा का अध्ययन करना।

अतएव इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान ग्रन्थ 'आदर्श चरित्रम्' पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज का जीवन चरित्र है। वैसे तो हिन्दी संस्कृत तथा प्राकृत में जीवनचरित्रों की इतनी भरमार है कि उनको पढ़ना भी कठिन है, किन्तु पूज्य आचार्य श्री खूबचन्द जी महाराज के इस जीवन चरित्र में कुछ ऐसी विशेषता है जो अन्य संसारिक व्यक्तियों के जीवनचरित्र में नहीं पाई जाती।

पुरुष हृदय स्वभाव से ही पतनशील है। तनिक २सा प्रलोभन भी बड़े २ धीर वीर पुरुषों के हृदय को चलायमान कर देता है। फिर कंचन और कामनी का प्रलोभन तो संसार में सबसे बड़ा प्रलोभन है। भारतवर्ष के साधुओं और ब्रह्मचारियों की जीवन घटनाओं पर सामूहिकरूप से विचार करने पर पता चलता है कि उनमें से अनेक ऐसे निर्धन थे कि उनका विवाह होना तो दूर, उनको भरपेट अन्न तक नहीं मिलता था, जिससे वह आगे चल करके साधु या ब्रह्मचारी बनगए। अनेक व्यक्ति विवाहित होकर

भी पत्नी मर जाने से ब्रह्मचारी या साधु बन गए। कुछ ऐसे थे जिनका विवाह हो चुका था, किन्तु जो अपनी पत्नी का पेट पालने में असमर्थ थे, अतः वह कमाने धमाने की चिन्ता से छूटने के लिये साधु या ब्रह्मचारी बन गए। अनेक व्यक्ति आजीविका का अवलम्ब होते हुए भी अनुकूल पत्नी न पाने से साधु बन जाते हैं। अनेक व्यक्ति घर वालों के वाक्यबाणों से बिद्ध होकर घरबार छोड़ देते हैं। किन्तु प्रभूत कञ्चन और अनुकूल कामिनी पाकर घर केवल आत्मोन्नति की भावना से घर को परित्याग करने वाले विरले ही शूर होते हैं। आचार्यश्री खूबचन्द जी ऐसे ही वीर आत्मा हैं। आपके घर में सांसारिक सम्पत्ति की कमी न थी। आपकी सांसारिक जीवन की पत्नी अत्यंत पतिपरायणा, सुंदरी, अनुकुल एवं आज्ञाकारिणी थी'। आपके पिता का भी आपमें अगाध स्नेह था। आपके भाई आदि अन्य कुटम्बी भी आपके सब प्रकार से अनुकूल थे। अतएव इस प्रकार के सुख साधनों के रहते वैराग्य की भावना उत्पन्न होना अलौकिक आश्चर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस बात को इतिहास के सामान्य पाठक भी जानते हैं कि गौतम बुद्ध के संसार के महापुरुषों में गिने जाने का कारण उनके उपदेश की अपेक्षा उनका त्यागपूर्ण जीवन ही अधिक है, इतिहास लेखक उनके अपनी प्यारी पत्नी यशोधरा तथा अल्पायु पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़ कर चले जाने की घटना का वर्णन अत्यन्त भावुक शब्दों में किया करते हैं! साहित्य के विद्वानों ने इस

घटना के आधार पर अनेक नाटकों, काव्यों तथा गद्य ग्रन्थों की रचना करके इस बात के महत्त्व को प्रगट किया है। जैन जाति के लिये यह बात कम सौभाग्य की नहीं है कि उसने भी ऐसे वीर नररत्न को उत्पन्न किया, जिसने बुद्ध के समान अपनी पत्नी को जानबूझ कर छोड़ दिया। बल्कि एक बात में तो आचार्य खूबचन्द्र जी गौतम बुद्ध से भी बढ़ जाते हैं। सम्भवतः गौतम बुद्ध का आत्मा गृहत्याग करते समय बलवान् नहीं था। उनको भय था कि पत्नी के स्नेह सिक्त शब्दों के माधुर्य में उनका गृह-त्याग का निश्चय डगमगा न जावे। अतः वह पत्नी से पष्ट कुछ भी न कह कर चोरों के समान छिप कर भागे और केवल उस समय उसके सामने प्रगट हुए जब उनकी कीर्ति नए धर्म के प्रवर्तक के रूप में भारतवर्ष भर में फैल गई।

आचार्य श्रीखूबचन्द्र जी महाराज के चरित्र में आरम्भ से ही दृढ़ता दिखलाई देती है। वह साहसपूर्वक अपना विचार अपने कुटुम्बियों को सुना देते हैं। पिता से वह गृहत्याग के विषय पर खुले दिल से वादविवाद करते हैं और घर को छोड़ कर चले जाते हैं। किन्तु जैन मुनियों ने एक बड़ी जबर्दस्त मर्यादा स्थापित की हुई है। वह घर वालों की अनुमति के बिना किसी को भी मुनिदीक्षा नहीं देते। आचार्य खूबचन्द्र जी महाराज घर से तो चले आए, किन्तु इस मर्यादा की दीवार ने उनके मार्ग को एक दम रोक दिया। परन्तु वह तो अपने निश्चय पर पर्वत के समान अचल थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था

भी पत्नी मर जाने से ब्रह्मचारी या साधु बन गए। कुछ ऐसे थे जिनका विवाह हो चुका था, किन्तु जो अपनी पत्नी का पेट पालने में असमर्थ थे, अतः वह कमाने धमाने की चिन्ता से छूटने के लिये साधु या ब्रह्मचारी बन गए। अनेक व्यक्ति आजीविका का अवलम्ब होते हुए भी अनुकूल पत्नी न पाने से साधु बन जाते हैं। अनेक व्यक्ति घर वालों के वाक्यबाणों से बिद्ध होकर घरबार छोड़ देते हैं। किन्तु प्रभूत कञ्चन और अनुकूल कामिनी पाकर घर केवल आत्मोन्नति की भावना से घर को परित्याग करने वाले विरले ही शूर होते हैं। आचार्यश्री खूबचन्द जी ऐसे ही वीर आत्मा हैं। आपके घर में सांसारिक सम्पत्ति की कमी न थी। आपकी सांसारिक जीवन की पत्नी अत्यंत पतिपरायणा, सुंदरी, अनुकुल एवं आज्ञाकारिणी थी। आपके पिता का भी आपमें अगाध स्नेह था। आपके भाई आदि अन्य कुटम्बी भी आपके सब प्रकार से अनुकूल थे। अतएव इस प्रकार के सुख साधनों के रहते वैराग्य की भावना उत्पन्न होना अलौकिक आश्चर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस बात को इतिहास के सामान्य पाठक भी जानते हैं कि गौतम बुद्ध के संसार के महापुरुषों में गिने जाने का कारण उनके उपदेश की अपेक्षा उनका त्यागपूर्ण जीवन ही अधिक है, इतिहास लेखक उनके अपनी प्यारी पत्नी यशोधरा तथा अल्पायु पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़ कर चले जाने की घटना का वर्णन अत्यन्त भावुक शब्दों में किया करते हैं! साहित्य के विद्वानों ने इस

घटना के आधार पर अनेक नाटकों, काव्यों तथा गद्य ग्रन्थों की रचना करके इस बात के महत्त्व को प्रगट किया है। जैन जाति के लिये यह बात कम सौभाग्य की नहीं है कि उसने भी ऐसे वीर नररत्न को उत्पन्न किया, जिसने बुद्ध के समान अपनी पत्नी को जानबूझ कर छोड़ दिया। बल्कि एक बात में तो आचार्य खूबचन्द्र जी गौतम बुद्ध से भी बढ़ जाते हैं। सम्भवतः गौतम बुद्ध का आत्मा गृहत्याग करते समय बलवान् नहीं था। उनको भय था कि पत्नी के स्नेह सिक्त शब्दों के माधुर्य में उनका गृह-त्याग का निश्चय डगमगा न जावे। अतः वह पत्नी से पष्ट कुछ भी न कह कर चोरों के समान छिप कर भागे और केवल उस समय उसके सामने प्रगट हुए जब उनकी कीर्ति नए धर्म के प्रवर्तक के रूप में भारतवर्ष भर में फैल गई।

आचार्य श्रीखूबचन्द्र जी महाराज के चरित्र में आरम्भ से ही दृढ़ता दिखलाई देती है। वह साहसपूर्वक अपना विचार अपने कुटुम्बियों को सुना देते हैं। पिता से वह गृहत्याग के विषय पर खुले दिल से वादविवाद करते हैं और घर को छोड़ कर चले जाते हैं। किन्तु जैन मुनियों ने एक बड़ी जबर्दस्त मर्यादा स्थापित की हुई है। वह घर वालों की अनुमति के बिना किसी को भी मुनिदीक्षा नहीं देते। आचार्य खूबचन्द्र जी महाराज घर से तो चले आए, किन्तु इस मर्यादा की दीवार ने उनके मार्ग को एक दम रोक दिया। परन्तु वह तो अपने निश्चय पर पर्वत के समान अचल थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था

कि सब प्रकार की कठिनाइयों को पार करके भी जिनदीक्षा ग्रहण की जावे। अस्तु, उन्होंने अपने पिता को अनुमति देने का संदेश भेज कर अपने आपको फिर एक कठिन परीक्षा के लिये तय्यार किया। वास्तव में यह परीक्षा संसार की सब से कठिन परीक्षा थी। पिता ने आपको निम्बाहेड़ा बुला कर आपके सामने आपकी पत्नी को कर दिया। वर्तमान पुस्तक का इस प्रसंग पर होने वाला पति-पत्नी संवाद वास्तव में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इस संवाद को पढ़ कर सहसा यह उपमा मन में आ जाती है कि एक निर्बल प्राणी एक अत्यन्त ढालू पर्वत पर खड़ा है। उसको एक स्त्री नीचे की ओर खींच रही है, किन्तु एक पुरुप उसको ऊपर की ओर खींच रहा है। आचार्य श्री का आत्मा वास्तव में उस समय संसार रूपी अत्यन्त ढलुवां पहाड़ी पर खड़ा था जिसको उनकी पत्नी नीचे को खैंचती थी और आचार्यश्री उसको ऊपर को खैंच रहे थे। पहाड़ी से नीचे की ओर को खैंचने वाला व्यक्ति कैसा ही निर्बल होने पर भी ऊपर से खैंचने वाले बलवान् से बलवान् पुरुप को भी नीचे को खैंच लेता है, किन्तु आचार्य खूबचन्द्र जी अलौकिक शक्ति सम्पन्न थे। उन्होंने अपनी तर्क शक्ति से न केवल अपनी पत्नी को निरुत्तर कर दिया; वरन् उससे दीक्षा लेने की अनुमति भी प्राप्त कर ली। वास्तव में पति पत्नी का यह संवाद बुद्ध के 'मार-विजय' वाली घटना को स्मरण कराता है।

यह कहा जा सकता है कि आचार्य श्री ने अपने कल्याण के

लिये एक सती अबला को छोड़ कर उच्चकोटि की स्वार्थपरता का परिचय दिया। किन्तु वर्तमान ग्रंथ को पढ़ने से इस प्रश्न का उत्तर भी अपने आप ही मिल जाता है। यद्यपि घर से आप स्वार्थभावना से पृथक् हुये थे, किन्तु आपके मन में सदा परोपकार के भाव लगे रहे अतएव आपने पूरे वर्ष भर सामान्य रूप से और चातुर्मास्य में विशेष रूप से कल्याणकारी उपदेश देकर सदा ही जनता का कल्याण किया। इतना ही नहीं, वरन् आप कल्याण के इसी संदेश को सुनाने के लिये उसी प्रकार अपने नगर निम्बाहेड़ा में गये, जिस प्रकार गौतम बुद्ध अपनी पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल और पिता शुद्धोदन को उपदेश देने के लिये कपिलवस्तु गये थे। यह प्रसन्नता की बात है कि बाद में आचार्यश्री की पत्नी भी जैनदीक्षा को लेकर आर्यिका बन गईं और अब घोर तपस्या कर रही हैं।

वर्तमान पुस्तक में आचार्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज के चरित्र के अतिरिक्त उनके पूर्ववर्ती पांच आचार्यों का संक्षिप्त चरित्र देकर उनके शिष्यों के नाम भी दिये गये हैं। इन सब बातों को देखकर यह कहना पड़ता है कि इस ग्रन्थ का नाम 'आदर्श-चरित्रम्' ठीक ही रखा गया है।

यह कहा जा सकता है कि आदर्श चरित्र तो अन्य सम्प्रदाय के साधुओं का भी हो सकता है। किन्तु उन महानुभावों के प्रति पूर्ण आदर प्रकट करते हुए भी हम इस युक्ति को नहीं मान सकते। हमारी सम्मति में अहिंसा संसारका सर्वोत्तम धर्म है

## 'अहिंसा परमो धर्मः' ।

भगवान् महावीर ने आज से अढाई सहस्र वर्ष पूर्व इसी अहिंसा का उपदेश दिया था और आज महात्मा गांधी भी उसी अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। अन्य धर्मों पर धार्मिक आक्षेप न करते हुए भी हम को यह कहने के लिये विवश होना पड़ता है कि अहिंसा धर्म का पालन जैनियों के समान संसार का अन्य कोई धर्म नहीं करता। जैनियों के अतिरिक्त संसार में इसाई और बौद्ध भी अहिंसा के प्रचारक बनने का दावा करते हैं। किन्तु इन दोनों ही धर्मों में मांसभक्षण को वैध माना है गया। बाइबिल में कई स्थलों पर स्वयं ईसा मसीह के मांस भक्षण करनेका उल्लेख किया गया है। बौद्ध धर्म में तो मृतक प्राणी का मांस खाने में कोई पाप ही नहीं माना जाता। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष के बुद्ध चरित्र को देखने से प्रगट है कि बुद्ध की मृत्यु उस रोग के कारण हुई थी जो उसको शूकर का मांस न पचने के कारण हुआ था। बौद्ध साधु आज कल भी अधिक संख्या में मांस खाते हैं। वर्तमान समय के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु महापंडित राहुल सांकृतायन जी जब हम से दिसम्बर १९३६ में स्वर्गीय बैरिस्टर कांशी प्रसाद जायसवाल के स्थान पर पटना में मिले तो उन्हों ने यही हास्य किया, "शास्त्री, जी आपको मोटा होने का कोई अधिकार नहीं, क्योंकि आप मांस नहीं खाते ?"

इसमें कोई संदेह नहीं कि बुद्ध ने प्राचीन काल में भगवान महावीर के समान वेदों के नाम पर की जाने वाली पशु हिंसा

का विरोध किया था, किन्तु इसके साथ ही उन्हों ने मृतक मांस खाने का विधान भी कर दिया था। वास्तव में बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग है। वह न तो जैनियों के समान घोर तपश्चरण करके शरीर को कष्ट देने का ही समर्थन करता है और न प्राचीन काल के वैदिक याजकों एवं वाममार्गियों के समान अत्यन्त भोगमय जीवन व्यतीत करने को ही पसंद करता है। इसी लिये उसने भोजन के विषय में भी मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करते हुए मृतक मांस का विधान किया है। संभवतः यहां इस बात को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि मांस भक्षक कभी भी पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकता। महात्मा गांधी ने भी इसी लिये अहिंसा के अनुयाइयों को मांस भक्षण न करने का आदेश दिया। बल्कि महात्मा जी तो इससे आगे यहां तक बढ़गए कि उन्होंने प्राणियों के दूध तक का परित्याग कर दिया। केवल प्राण रक्षा के ध्यान से डाक्टरों के अत्यंत अनुरोध से बकरी के दूध की अपने लिये छूट रखी हुई है। यहां एक बात अत्यंत रोचक है। गौतम बुद्ध ने अपने अनुयाइयों में मृतक मांस का विधान किया तो महात्माजी मृतक चर्म का विधान करते है। उनका कहना है कि प्राणियों को उसी प्राणि के चमड़े-का जूता पहिनना चाहिंये जो अपने आप मर गया हो। कसाई-खाने में मारे हुए प्राणी के चर्म के जूते पहिनने के आप घोर विरोधी हैं। किंतु आचार्य श्रीखूबचन्द जी महाराज इससे भी इतना आगे निकल गए है कि वह जूता मृतक मांस का जूता तो क्या

पैर में कोई भी वस्तु नही पहिनते । जैन मुनियों का यह नियम है कि वह अपने आगे की ओर हाथ भूमि को देखकर नंगे पांव ही चला करते हैं, जिससे कोई प्राणि उनके पांव के नीचे न आ जावे ।

वास्तव में ऐसे चरित्र को ही आदर्श चरित्र कहना चाहिये और यही 'आदर्श चरित्र' है ।

इति शम्

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री M.O.Ph., H.M.D.
काव्य-साहित्य-तीर्थ-आचार्य,
प्राच्य विद्या वारिधि, आयुर्वेदाचार्य ।
८११ धर्मपुरा देहली
१६ जनवरी १६३६ ई० ।



श्री महावीर जैन सभा जम्मू (पंजाब) के सदस्य गण

* वन्दे वीरम् *

# आदर्श चरितम्

—*—

## प्रथम परिच्छेद

मङ्गलाचरण

श्रीवीरः सर्वदिग्गैः कनकरुचितनूरोचिरुद्दीप्तदीपै-
र्मङ्गल्यःसोऽस्तु दीपोत्सव इव जगदानन्दसन्दर्भकन्दः।
सूक्तिर्दिव्यप्रभीयं मृदुविशदपदा मानसे धीयमाना,
भव्यानां भव्यभूत्यै भवतु भवतुदे भावना भावितानाम् १॥

भावार्थ—जो सब दिशाओं में व्याप्त, सुवर्ण कान्ति वाले शरीर की प्रभा रूपी प्रज्वलित दीपों से. जगत् में पूर्ण आनन्द प्रद, माङ्गलिक दीपोत्सव के समान हैं। तथा जिनकी दिव्य प्रभा संयुक्त मधुर और स्पष्ट-वाक्य-संदर्भित, दिव्य भाषा, मोक्षार्थी भव्य प्राणियों के हृदयों को पवित्र करने वाली तथा कल्याणकारी है। वे ही परम पवित्र वीर भगवान् सब के लिए मङ्गल प्रदाता हों ॥१॥

अयतु दुर्नयपङ्कजनीवने, हिमततिर्मतिकैरवकौमुदी ।
शमयितुं तिमिराणि जने महावृजिनभाजिनभा जिनभारती

भावार्थ—वीतराग प्रभु की वाणी, दुर्नीति रूपी कमल । वन में ओस के समान, बुद्धि रूपी कुमोदिनी को विकास करने के लिए चंद्रिका के समान, तथा पाप रूपी अन्धकार को निवारण करने के लिए दिव्य प्रभा के समान है। इस पवित्र जिन वाणी की सदैव जय हो ! विजय हो !! ॥२॥

यैः क्षुण्णाः प्रसरद्विवेकपविना कोपादिभूमिभृतो-
योगाभ्यासपरश्वधेन मथितोयैर्मोहधात्रीरुहः ।
वद्धः संयमसिद्धमन्त्रविधिना यैः प्रौढकामज्वरः,
तान्मोक्षैकसुखानुषङ्गरसिकान्वन्दामहे योगिनः ॥३॥

भावार्थ—जिन साधुओं ने अपने अपूर्व विस्तृत ज्ञान रूपी वज्र के द्वारा क्रोधादि- पर्वतों को चूर्ण-विचूर्ण कर डाला है ! तप-रूपी तीक्ष्ण कुल्हाड़े द्वारा मोह रूपी वृक्ष को समूल नष्ट कर डाला है। और संयम रूपी सिद्ध-मन्त्र द्वारा इस दुर्जय काम ज्वर को बाँध लिया है। उन मोक्ष रूपी अक्षय सुख के अनुरागी, मुक्ति-रसिक साधुजनों को सादर वन्दना करते हैं ॥ ३ ॥

मोहोयत्परिसेवया विघटते ज्ञानं चितोभासते,
भव्यानां परिसेवनीयः सुपथोयस्माच्च संजृंभते
तिर्यग्मानुषदेवनारकगतीस्त्यक्त्वा च कर्मव्रजम्,
मुक्तिं यान्ति जनाः सदा स जयतात् श्रीजैनधर्मोमहान्

भावार्थ—जिस जैन धर्म के सेवन करने से, मोह दूर हो जाता है, आत्म-ज्ञान प्रतिभासित होता है, तथा जिसके द्वारा जनता नर्क, तीर्यंच, मनुष्य और देवगति एवं कर्मसमूह को नष्ट कर के मुक्ति को प्राप्त करती है। उसी जैन धर्म की सदैव जय हो ! विजय हो !! ॥४॥

जैन साधुओं के लक्षण

मित्रे नन्दति नैव नैव पिशुने वैरातुरोजायते,
भोगे लुभ्यति नैव नैव तपसि क्लेशं समालम्बते ।
रत्ने रज्यति नैव नैव दृषदि प्रद्वेषमापद्यते,
जैनेऽस्मिन् प्रभवन्ति शुद्धहृदयाः मुक्तिप्रियाः साधवः॥५॥

भावार्थ—जैन सम्प्रदायानुयायी साधु साम्यवाद के प्रेमी होते हैं। अर्थात् वे शत्रु और मित्र पर सम-भाव रखते हैं। शत्रुओं को देख कर उन पर क्रोध नहीं करते हैं। और न मित्रों को देख, उन पर अनुराग ही करते हैं। इसी प्रकार न तो वे भोगों में लुब्ध होते हैं और न तपस्या से घृणा ही करते हैं। हीरे, पन्ने, रत्न, माणिक्य और पाषाण आदि को वे समान दृष्टि से देखते हैं। यों वे साम्यवादी साधु मोक्षाभिलाषी और शुद्ध-हृदयी होते हैं ॥५॥

गच्छ-परिचय

श्रीसिद्धार्थकुलाम्बराम्बरमणिश्रीवर्धमानप्रभोः-
पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणीः ।

आसीद्वासववृन्दवन्दितपदद्वन्द्वः पदं सम्पदाम्,
तत्पट्टाम्बुधिचन्द्रमागणधरः श्रीमान् सुधर्माभिधः ॥६॥

भावार्थ— सिद्धार्थ-कुल-दिवाकर श्री वर्द्धमान स्वामी के चरण-रज-सेवक, सच्चरित्र आदर्श मुनि-मण्डल में अग्रगण्य, इन्द्र द्वारा वन्दनीय, पवित्र चरण-युगल वाले, सम्पत्तियों के आयतन और श्री वर्द्धमान प्रभु रूपी समुद्र के लिए चन्द्रमा के तुल्य श्रीमान् 'सुधर्म स्वामी' नामक गणधर हुए ॥६॥

तद्गच्छाश्रयतोबभूवुरनुपा गच्छाः पवित्राशया-
स्तन्मध्ये भुवि विद्यते च हुक्मीचन्द्राख्यगच्छोऽधुना ।
तत्रास्ते मुनिखूबचन्द्रसुमतिर्विश्वम्भराभामिनी,
भास्वद्भाललामकोमलयशः स्तोमः शमारामभूः ॥७॥

भावार्थ—श्री सुधर्म स्वामी के गच्छ में,उनके आज्ञानुवर्ती,उच्च अभिप्राय वाले अनेक गच्छ हुए हैं। जिनमें से एक पवित्र गच्छ श्री हुक्मीचन्द्र जी म० के नाम से विख्यात हुआ। जो इस समय विद्यमान है। इन्हीं श्री हुक्मीचन्द्रजी म० की सम्प्रदाय में हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचन्दजी महाराज, जो कि सद्बुद्धि के भण्डार हैं, सुशोभित हुए हैं। आपकी कोमल कीर्ति का समूह, शांतिरूपी उपवन बन कर, पृथ्वी-मण्डल के तेजस्वी ललाट पर विस्तारित हो रहा है ॥७॥

सः श्रीयुक्तपोधनस्त्रिपथगा पाथः प्रवाहैरिव,
स्वैरं यस्य यशोभरैः क्षितितलं पावित्र्यमाह्नत्रितम् ।

**गाम्भीर्यादिगुणोज्ज्वलः शुभपरः श्रीजैनधर्मे मतिः,**
**तस्याहं चरितं जनेषु विदितं वक्तुं भवाम्युद्यतः ॥८॥**

भावार्थ—गंगा-जल के प्रवाह के समान, जिनके कीर्ति-समूह से, पृथ्वी-तल पवित्र हो गया है। उन्हीं,तपोधन नाथ, सौम्य-गाम्भीर्यादि गुणों से सम्पन्न, कल्याणकारी, जैन धर्म पर अटूट श्रद्धा रखने वाले, मुनि श्री खूबचंद्रजी म० के परम आदर्श चरित्र को, जो कि विश्व-विख्यात है, वर्णन करने के लिये मैं प्रस्तुत हुआ हूँ।

जन्म-भूमि

**श्रीभारते भारतवर्षिराज्यं, श्रीकान्तसामन्तकपूरप्राज्यम् ।**
**नव्वावसाहेबयशोभिर्भ्राज्यं, समस्ति लक्ष्म्या भुवि टोंकराज्यम्**

भावार्थ—इस धर्म-प्राण भारतवर्ष में, क्रान्ति की वर्षा करने वाला, क्षत्रिय राज-पुत्रों के समूह से सुशोभित, समृद्धिशाली, राजपुताना प्रान्त के अन्तर्गत, श्रीमान् नवाब साहब के यश से शोभायमान, लक्ष्मी से विलसित एक टोंक नामक राजस्थान है ॥९॥

**सौभाग्यसौन्दर्यगते तरुण्याः, वक्षः स्थले राजति हारयष्टिः**
**तथैव राज्ये शुभधामयष्टिः, निम्बाहडा राजति पूः समष्टिः**

भावार्थ—उस टोंक नामक राजस्थान में भव्य-भवनों की कतारों से सुशोभित, एक 'निम्बाहेड़ा' नामक परम मनोहर और सुन्दर नगर है। जो उस राजस्थान का भूषण है। वह ठीक इस प्रकार शोभायमान है,जिस प्रकार कि किसी सौन्दर्य-संयुक्ता तरुणी के वक्ष-स्थल पर चन्द्रहार सुशोभित होता है ॥१०॥

**धर्मैस्तपोभिः मुनिदर्शनैश्च, कालं नयन्तः पुरुषाः समस्ताः ।**
**मर्त्रानुरूपं शुभकृत्यलीनाः, राजन्ति नार्यश्च सुशीलवत्यः**

भावार्थ—उस परम मनोहर, निम्बाहेड़ा नामक नगर के पुरुष धर्म-ध्यान, तप-त्याग और मुनि-दर्शनादि धार्मिक कृत्यों में, सदैव लीन रहते हैं। इसी प्रकार वहाँ की सती-साध्वी शीलवती स्त्रियाँ भी अपने पति देवों के अनुरूप ही शुभ धार्मिक कृत्यों को सानन्द सम्पन्न करती हुई सुख पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं।

वंश-परिचय

**तत्राभवच्छ्रीमहदोसवालः, वणिग्वरः श्रेष्ठिषु टेकचन्द्रः ।**
**जेतावताख्येऽतिपवित्रगोत्रे, व्यापारदक्षोऽघिसुताभिलाषी**

भावार्थ—उस निम्बाहेड़ा नामक नगरी में ओसवाल जाति के श्री जेतावत शुभ गोत्रोत्पन्न, व्यापार में पूर्ण रूप से दक्ष श्रीयुत टेकचन्दजी नामक एक सेठ निवास करते थे ॥१२॥

**पूर्वार्जितप्रबलपुण्यवशेन तस्य,**
**सन्न्यायमार्गसुकृतानुगतप्रवृत्तेः ।**
**पापप्रयोगविरतस्य गृहे समस्ताः**
**भेजुः स्थिरत्वमचिरादपि सम्पदश्च ॥१३॥**

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्दजी जेतावत अपने पूर्वोपार्जित प्रबल पुण्योदय के प्रताप से सदैव न्यायोचित कार्यों में प्रवृत्त रहते थे। वे पाप-प्रयोगों से सदैव पृथक् रहते थे। और इन समस्त शुभ कार्यों के प्रताप से उन के घर में सब प्रकार की सम्पदाओं ने चिरस्थायी निवास किया था ॥१३॥

सद्धर्मसाधार्मिकपोषणेन, मुमुक्षुवर्गस्य सुतोषणेन ।
दीनादिदानैः स्वजनादिमानैः, स्वसम्पदो यः सफलीचकार

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्दजी सा० ने अपनी प्राप्त लक्ष्मी को अपने स्वधर्मी भाइयों की रक्षा में, दीन-हीन व्यक्तियों को दान देने में, कुटुम्ब के सम्मानादि कार्यों में तथा मुनिराजों को निर्दोष आहारादि प्रदान करने में व्यय करके उसका सदुपयोग किया था ॥१४॥

गेन्दीबाइ बभूव तस्य गृहिणी शीलव्रतद्योतिनी,
तस्याः कुक्षिसुशुक्तिमौक्तिकसुताः संद्योतयाञ्चक्रिरे ।
चुन्नीलाल उदारचित्तपुरुषः श्रीखूबचन्द्राभिधो-
भोगीदास उदग्रबुद्धिलसितो दाडीमचन्द्रस्तथा ॥१५॥

भावार्थ-श्रीमान् सेठ टेकचन्दजी की पत्नि का शुभ नाम गेंदीबाई था। जो परम सदाचारिणी और पतिव्रता थी। उसने अपनी पवित्र कुक्षि से, कुशाग्र बुद्धि वाले चार पुत्र-रत्नों को जन्म दिया जिनके शुभ नाम क्रमशः चुन्नीलाल, खूबचन्द्र, भोगीदास और दाड़िमचंद्र रक्खे गये ॥१५॥

मोती रत्नाख्यके कन्ये, गेन्दी सा सोष्टसद्गुणे ।
षट् सन्तानयुतश्रेष्ठोऽनेष्ठधर्मस्वभावतः ॥१६॥

भावार्थ—इन चार पुत्रों के अतिरिक्त श्रीमती गेंदीबाई की कुक्षि से दो कन्याएँ भी उत्पन्न हुईं। जिनका शुभ नाम क्रमशः मोतीबाई तथा रत्नबाई रक्खा गया। इस प्रकार चार पुत्र और दो

कन्याएँ, यों छः सन्तानों से संयुक्त, श्री सेठ टेकचन्दजी अपने अधिक उत्कृष्ट भावों से विशेष धर्माराधना में तत्पर हुए ॥१६॥

जन्म और बाल्यावस्था

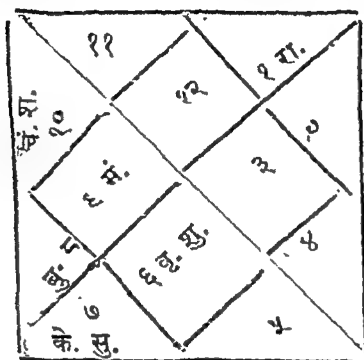
वर्षे व्योमगुणाङ्कभूपरिमिते श्रीवैक्रमीये शुभे
शुक्ले कार्तिकमासके बुधदिनेऽष्टम्यां तिथौ सम्मिते ।
पुत्रःश्रीयुतखूबचन्द्रगुणधीः सम्प्राजनिष्ठावनौ,
आत्माऽयं जगतः सदागतिसमस्तेजोभिः समलंकृतः ॥१७॥

स्वस्थाने मकरे स्थितः शशियुतः सूर्यस्य पुत्रः शनिः
नन्दाङ्केऽवनिनन्दनः गुरुसितौ कन्यागतौ रेजतुः ।
राहुर्मेषगतोबुधश्चवसुगः सूर्यस्तुलायां यथा-
वित्थं तस्य तदा बभौ ग्रहगणः मीनस्य लग्ने शुभे ॥१८॥

भावार्थ—सूर्य के समान तेजस्वी, अनेक शुभ गुणालंकृत, हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचन्द्र जी म० का शुभ जन्म विक्रम संवत् १६३० के कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार के दिन हुआ था। उस समय मीन लग्न था। और शनि, अपनी राशि मकर में, चन्द्रमा सहित शोभायमान था। मङ्गल धन में, तथा बृहस्पति एवं शुक्र कन्या में, स्थित थे। मेष में राहु और वृश्चिक पर बुध था। सूर्य और केतु, तुला राशि पर थे ॥१७-१८॥

चरित्रनायक जी की जन्म कुण्डली

श्री शुभ संवत् १९३० वि० कार्तिक शुक्ला ८ बुधवार




यज्जन्मन्यभवन्प्रसन्नवदनाः काष्ठा गृहान्तःस्थिताः,
दीपाः कान्तिविलोपकार्भकभयान्मन्दा पतद्वृत्तयः ।
उद्भूतप्रतिभाद्भुतस्य मतिमच्चन्द्रस्य चिद्रूपता,
माहात्म्यं स्तुमहे किमस्य निखिलग्रन्थाऽधिमन्थात्मनः
सूनुस्तातगृहाङ्गणे तु ववृधे कल्पद्रुमोनन्दने,
विन्ध्याद्राविवकुञ्जरोमणिगणः श्रीरोहणे पर्वते ।
सोऽयं कान्तिसुसारशालिवपुषा पित्रोर्हृदाह्लादकः,
संसारे सुमनोमनोरमगुणैर्देवेन तुल्यो बभौ ॥२०॥
चन्द्रः पद्म इवामले च कमले कोशः शुचावम्बुदः,
कन्दोऽम्भोधितले मनोरमगुणैः श्रीवैद्रुमः पादपे ।

प्राप्ते सत्कुलजन्ममानवभवे श्रीजैनधर्मोयथा,
नीरोगादिसमस्तवस्तुनिचये पुण्येन लब्धे सति ॥२१॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी अद्भुत प्रतिभाशाली तथा अनेक ग्रन्थों के सार को हृदयंगम करने वाले हैं। अतः उनके अलौकिक महात्म्य का वर्णन करने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। आपके जन्म-समय में समस्त दिशाएँ प्रसन्नता को प्राप्त हो गईं। गृह-स्थित दीपक भी आपकी उज्वल प्रभा के सामने, अपनी कान्ति के विलोप हो जाने के भय से, मन्द-ज्योति वाले हो गये। जिस प्रकार नन्दन-वन में कल्प वृक्ष फलता-फूलता है। और विन्ध्याचल पर्वत की गुफाओं में हाथी तथा श्री रोहिणी पर्वत पर मणियों का समुदाय वृद्धि को प्राप्त होता है। उसी प्रकार हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्र जी, अपने घर के आँगन में परमानंद पूर्वक वृद्धि को प्राप्त हुए। आप अपने शरीर की परम सुन्दर कान्ति से अपने माता और पिता के चित्त को प्रसन्न करने वाले, तथा सद्गुणों के कारण विद्वानों के लिए प्रातः स्मरणीय हैं। फूलों के समान कोमल और सौरभ संयुक्त शरीर तथा सौंदर्यादि गुणों से देव के समान शोभायमान् हैं। निर्दोष परम उज्ज्वल रत्न के समान सर्व गुण सम्पन्न पवित्र जैन कुल में जन्म लेकर आप अपनी बाल्यावस्था में इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होने लगे, जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा, वर्षा ऋतु में बादल और समुद्र में मूँगा वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१६-२०-२१॥

यावत् बुद्धिवलं जहार सकलाः विद्याश्च सोयं सुधी-
स्तातस्तं प्रददौ धनं सुमनसा विद्यागुरोरर्चने ।
विद्याप्राप्तिरिहत्रिधासुविनयैरर्थैः पुनर्विद्यया,
जानन्नीतिमिमां विचारचतुरः सर्वोचितार्थप्रदः ॥२२॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्र जी ने अपने बुद्धि-बल के अनुसार अनेक विद्याओं को सम्पादन किया। और उनके पूज्य पिता श्री टेकचन्द्र जी ने भी विद्या-गुरुओं के लिए पर्याप्त धन व्यय किया। क्योंकि वे यह भली भाँति जानते थे, कि विद्या-प्राप्ति के केवल तीन ही साधन हैं। यथा-(१) गुरु की सेवा करना (२) विद्या के वदले विद्या का दान देना और (३) विपुल धन राशि का प्रदान करना। इन साधनों के अतिरिक्त विद्या-प्राप्ति का और कोई चौथा साधन नहीं है ॥२२॥

सोऽयं षोडशवार्षिकोऽभवदथ स्पष्टैर्गुणैर्दत्तौ,
दार्याद्यै र्गुणवत्सुभारतभुवि प्राप्तै करैखः परम् ।
लोकानां नयनेषु रूपकमला रेखा अनेका ददौ,
बुद्ध्यानन्त्वमशेषरोचकतया चित्तेषु चाश्चर्यतः ॥२३॥

भावार्थ—औदार्यादि गुणों से विभूषित, परम सौन्दर्यशाली श्री खूबचन्द्र जी ने सोलह वर्ष की अल्पायुमें ही, अपनी स्वाभाविक तत्त्वान्वेषिणी अलौकिक बुद्धि का परिचय देकर जन-समाज को आश्चर्य में डाल दिया और उनके हृदयों में स्थान कर लिया ॥२३॥

व्यापारोचितविद्ययाकवित्गुणैरुर्दूगिरालंकृतम्,
दृष्ट्वा यौवनशालिनं निजसुतं श्रीखूबचन्द्रं पिता ।
सौन्दर्यस्य निकेतनं च विशदं संसारसारं वपुः,
संसारस्थविशालशैलीमनसा दध्यौ विवाहाय सः ॥२४॥

विवाह और दाम्पत्य जीवन

भावार्थ—जब श्रीमान् सेठ टेकचन्द्रजी ने अपने सुपुत्र श्री खूबचन्द्र जी को व्यापार-विद्या, उर्दूभाषा और कवित्व-शक्ति आदि सद्गुणों से अलंकृत तथा सौन्दर्य-निकेतन सुन्दर शरीर सहित युवा अवस्था में प्रवेश करते देखा तो अपनी सांसारिक परिपाटी के अनुसार उन्होंने उनका विवाह किसी सुयोग्य कन्या के साथ कर देना उचित समझा ॥२४॥

अट्टानापुरवासिनः सुकुलभूर्बोराख्यगोत्रोद्भव,
देवीचन्द्रवणिग्वरस्य तनयामायूयुजत्सुनुना ।
कन्याऽब्देऽरिसमुद्रनन्दवसुधा मार्गे शनौ पूर्णिमा,
तिथ्यां साकरदेवीनामगृहणीं श्रीखूबचन्द्रोऽवृणत् ॥२५॥

भावार्थ—अट्टाना (ग्वालियर स्टेट)निवासी, उच्च कुलीन, बोरा गोत्रोत्पन्न, सद्गृहस्थ श्रीमान् सेठ देवीचन्द्रजी की सौभाग्यवती सुशील कन्या श्रीमती साकरदेवी के साथ श्री टेकचन्द्र जी ने अपने पुत्र श्री खूबचन्द्रजी का वैवाहिक सम्बन्ध निश्चय किया। और शुभ संवत् १९४६ विक्रमी के मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा शनिवार के दिन उन दोनों का परस्पर पाणिग्रहण हो गया ॥२५॥

सितरुचिशुचिवासो बिभ्रतीसम्भृताङ्गी,
विशदवदनकान्तिःसावराङ्गं व्यराजीत् ।
कनककमलिनीवस्वच्छगङ्गा तरङ्गा,
वलिवलयितमूर्तिः स्पष्टदृष्टाम्बुजश्रीः ॥२६॥

भावार्थ—विवाह के पूर्व श्री सौभाग्याकांक्षिणी साकरदेवी पूर्ण निर्मल उज्ज्वल स्वच्छ वस्त्रों को धारण कर, अपनी अनुपम कांति द्वारा इस प्रकार शोभा को प्राप्त हुई। जैसे कि पवित्र गंगा नदी के स्वच्छ जल की उत्ताल तरङ्गों के अन्तर्गत अष्ट पत्र वाली सुवर्ण कमलिनी दैदिप्यमान् होती है ॥२६॥

अथ नवरविरश्मिस्मेरकाश्मीरनीरै,
परिणयनदिनादौ लक्ष्यरागासु दिक्षु
व्यधुरुदयदनङ्गं मङ्गलस्नानमस्याः,
पतिसुतपितृमातृभ्रातृवत्योयुवत्यः ॥२७॥

भावार्थ—प्रणय-बन्धन के पूर्व-दिवस, जब कि नूतन बाल-सूर्य की लाल-लाल किरणों से, समस्त दिशाएँ आलोकित हो रही थीं। उस पवित्र मङ्गल प्रभात में, सौभाग्यवती युवतियों ने मिल कर सौभाग्याकांक्षिणी श्री साकरदेवी को मङ्गल स्नान करवाया ॥२७॥

जितवलयविलासं पाणिदेशेयदस्याः,
परिणयमयमृणासूत्रमासूत्रिमात्रा ।
सपदिमदनदेवस्तद्विलोकी त्रिलोकी,
विजयिनि निजचापेज्यापरिस्पन्दमैच्छत् ॥२८॥

व्यापारोचितविद्ययाकविगुणैरुर्दूगिरालंकृतम्,
दृष्ट्वा यौवनशालिनं निजसुतं श्रीखूबचन्द्रं पिता ।
सौन्दर्यस्य निकेतनं च विशदं संसारसारं वपुः,
संसारस्थविशालशैलीमनसा दध्यौ विवाहाय सः ॥२४॥

विवाह और दाम्पत्य जीवन

भावार्थ—जब श्रीमान् सेठ टेकचन्द्रजी ने अपने सुपुत्र श्री खूबचन्द्र जी को व्यापार-विद्या, उर्दूभाषा और कवित्व-शक्ति आदि सद्गुणों से अलंकृत तथा सौन्दर्य-निकेतन सुन्दर शरीर सहित युवा अवस्था में प्रवेश करते देखा तो अपनी सांसारिक परिपाटी के अनुसार उन्होंने उनका विवाह किसी सुयोग्य कन्या के साथ कर देना उचित समझा ॥२४॥

अट्ठानापुरवासिनः सुकुलभूवोराख्यगोत्रोद्भव,
देवीचन्द्रवणिग्वरस्य तनयामायूयुजत्सु तुना ।
कल्याब्देऽरिसमुद्रनन्दवसुधा मार्गे शनौ पूर्णिमा,
तिथ्यां साकरदेवीनामगृहणीं श्रीखूबचन्द्रोऽवृणत् ॥२५॥

भावार्थ—अट्ठाना (ग्वालियर स्टेट) निवासी, उच्च कुलीन, बोरा गोत्रोत्पन्न, सद्गृहस्थ श्रीमान् सेठ देवीचन्द्रजी की सौभाग्यवती सुशील कन्या श्रीमती साकरदेवी के साथ श्री टेकचन्द्र जी ने अपने पुत्र श्री खूबचन्द्रजी का वैवाहिक सम्बन्ध निश्चय किया। और शुभ संवत १९४६ विक्रमी के मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा शनिवार के दिन उन दोनों का परस्पर पाणिग्रहण हो गया ॥२५॥

भावार्थ—श्री साकरदेवी के हाथ में उसकी माता ने कड़े की शोभा को लज्जित कर देने वाला जो 'कंगन-डोरा' बांधा था। वह इस प्रकार दिखाई दे रहा था, कि मानो किसी ने त्रिलोक विजयी कामदेव को जय करने के लिए, धनुष्य की प्रत्यंचा को चढ़ाया हो।

असमकुसुमपूजा लीनसद्‌यः समुद्‌यन्,
मधुकरकुलरावैराशिषं पुण्यराशिम्।
यदिहपदनतायां गोत्रदेव्योऽप्यवोचन्,
किमुकिमुनतदोचुः श्रद्धयागोत्रबद्धा ॥२६॥

भावार्थ—वसन्तोत्सव के समय कामदेव की पूजा में लीन उस साकर देवी नामक युवती के लिए गोत्र देवियों ने श्रद्धा में लीन हो कर भ्रमरों की झंकृति द्वारा क्या-क्या आशिर्वाद नहीं दिये? अर्थात् सब प्रकार के शुभाशीर्वाद दिये ॥२६॥

रसविवशमचालीद्बिभ्रतीशुभ्रवेशम्,
लसितमुरसिहारं कङ्कणं हस्तमध्ये।
शिरसि ललितवेणि शुभ्रवर्णां विनम्रा,
कलितचलितकाञ्चीं मण्डपं लग्नकस्य ॥३०॥

भावार्थ—तदनन्तर श्री साकरदेवी ने, प्रेमाधीन होकर शुभ्र वेष को धारण किया। वक्षस्थल पर हार, हाथ में कंकण, शीश पर सुन्दर शिखा तथा कटि-प्रदेश में एक सुन्दर नीचे लटकती हुई, चंचल काञ्चीदाम (कटि-मेखला) को धारण करती हुई लग्न-मंडप की वेदिका में उपस्थित हुई ॥३०॥

इहमुहुरवधाना तैः पलैश्चाक्षरैश्च,
द्विजवचनविवर्कैः साधिते लग्नसन्धौ,
गुरुरथवरवध्वोर्मङ्गलातोद्यनादैः ।
विलसति समकालं मीलयामास पाणी ॥३१॥

भावार्थ—तत्पश्चात शुभ लग्न में, पुरोहितजी ने सुन्दर वाजिन्त्रादि की मधुर ध्वनि के साथ, बड़े समारोह पूर्वक वर और वधू दोनों के कोमल हाथों को परस्पर सम्मिलित करवा दिये । अर्थात पाणिग्रहण संस्कार कर दिया ॥३१॥

शिथिलकरसरोजा लज्जमाना विकीर्य,
ज्वलितहुतवहान्तर्लाजमुष्टिं वधूः सा ।
अकुरुतगुरुवाचा किञ्चिदाचारधूम,
गृहणमथमुखाञ्जोत्सङ्गभृङ्गायमानम् ॥३२॥

भावार्थ—श्रीमती साकरदेवी ने अपने परम कोमल हस्त रूपी कमल द्वारा पुरोहित जी के कथनानुसार लज्जित हो कर जाज्वल्यमान होमाग्नि में धान्य को डाला । और उस समय यज्ञ के कुछ धूम्र को ग्रहण किया । उस धूम्र से उसका मुख रूपी कमल भ्रमर संयुक्त दिखाई दिया ॥३२॥

इत्थं तां गृहिणीं विवाह्यसमुदः श्वश्रोस्तदा प्रेषितः,
संप्राप्य स्वपुरं जनै समुदितैर्भूषाभिः संभूषितः।
शीर्षस्थापितपात्रया च सयुवा वध्वानि बद्धाञ्चलः,

पौरन्ध्रीशुभगीतिनाप्यनुगतोगेहस्य द्वारं ययौ ॥३३॥
तत्रानन्दपरस्तया स निवसन् वाणिज्यदक्षः सुधीः,
लक्ष्म्याश्चार्जनतः पितुः सुमनसः प्रीतेः पदं प्रार्जयन् ।
चित्ते धर्मपरः सदा सुखकरोमातुश्च सेवापरः,
प्रीत्यानन्दकरोऽभवत् स सुजनः सर्वस्य सन्तोषदः ॥३४॥

भावार्थ—इस प्रकार विवाह का कार्यक्रम समाप्त होने के पश्चात, श्री खूबचन्द्र जी अपनी भार्या श्रीमती साकरदेवी सहित, अपने सास-श्वसुर से विदा हुए। और अनेक प्रकार के आभूषणों तथा पुर-निवासी जनों से संयुक्त होकर उन्होंने अपने ग्राम निम्बाहेड़ा की ओर प्रस्थान कर किया। निम्बाहेड़ा में प्रवेश करते ही पुरन्धरियों ने नाना प्रकार के मंगल-गीत गाए। और बधाइयाँ दीं फिर बड़े ही स्वागत समारोह पूर्वक उन नव विवाहित वर-वधू को घर पर लाया गया। अब हमारे चरित्रनायक व्यवसाय-कुशल श्री खूबचन्द्र जी अपने वाणिज्य कौशल द्वारा अटूट लक्ष्मी का संचय करके अपने पिता श्री टेकचन्दजी के मन को परम संतुष्ट करने लगे। तथा यथोचित सेवा-भक्ति द्वारा माता जी के चित्त को भी पूर्ण प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार वे प्रेम-भाव तथा धार्मिक भाव से अपने गृहस्थ-जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करते हुए जनता के हृदय को आनन्दित करने लगे ॥३३-३४॥

जैनागम तत्त्ववारिधि, त्यागमूर्ति, श्रीमज्जैनाचार्य, परमप्रतापी

## पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज।



( चित्र केवल परिचय के लिये है )

जन्म सं० १९३०, दीक्षा सं० १९५२, आचार्यपद सं० १९९०।

# द्वितीय परिच्छेद

—— * ——

## वैराग्य की उत्पत्ति

---

वाणिज्यादिकलोककार्यकरणाद्द्रोधनं प्रार्जयन्,
वैराग्यांकुरभावपूर्णमनसा श्रीखूबचन्द्रः सुधीः ।
धर्मश्चापि विदन् मुनींश्च सततं संवन्दमानः मुहु-
र्गार्हस्थ्ये गमयां बभूव स युवा तुर्याणि वर्षाणि सः ॥३५

भावार्थ—इस प्रकार वाणिज्य-विद्या-विशारद श्री खूबचंद्रजी ने गृहस्थ-अवस्था में केवल चार वर्ष रह कर, अटूट धन-राशि का सम्पादन करते हुए, निर्ग्रंथ-मुनियों का भी पर्याप्त सत्संग किया। अर्थात् केवल इन चार वर्षों में ही उन्होंने मुनिराजों की सेवा-सुश्रूषा और चरण-वन्दनादि करते हुए उनसे सच्चे धर्म का स्वरूप समझ कर उसे हृदयंगम किया। अतः अब उनके हृदय में वैराग्य का संचार हो गया ॥३५॥

भूत्वेत्थं सगृही कदापि मुनिभिः शान्तोपदेशामृतै-
वैराग्यांकुरितो बभूव सुमतिः प्रोवाच जीवं स्वकम् ।
रे तीव्रोत्कटकूटचित्तवशिना स्वात्मन्त्वया हारितः,
संसारे शुभरत्नतुल्यनृभवोबुध्यस्व शीघ्रं हितम् ॥३६॥

भावार्थ—एक बार, सद्गृहस्थ श्री खूबचन्द्रजी को किसी निर्ग्रंथ-मुनि के उपदेशामृत पान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । मुनि महाराज के ओजस्वी व्याख्यान से, उनके हृदय में वैराग्य का स्थायी अंकुर उत्पन्न हो गया । इस सद्बोध के प्रभाव से अब वे अपनी आत्मा को समझाने लगे, कि हे आत्मन् ! तूने इस महान् छली और प्रपंची चित्त के वशीभूत होकर, इस संसार-प्रसिद्ध, रत्नोपम, मानव-जन्म को, निरर्थक ही खो दिया । अरे अब तो अपने हित को समझ ॥३६॥

मुक्त्वा दुर्मतिमेदिनीगुरुगिरा संशीन्यशीलाचलं,
बद्ध्वा क्रोधपयोनिधिं कुटिलतालङ्कां क्षपित्वा क्षणात् ।
जित्वा मोहदशाननं निधनतामाराध्य वीरव्रतं,
श्रीमद्राम इवाद्यमुक्तिवनिता युक्तो भविष्याम्यहम् ॥३७॥

भावार्थ—अब मैं इस दुर्मति रूपी अयोध्या को, गुरु स्वरूप पिता की आज्ञा से छोड़ता हुआ शील स्वरूप चित्रकूट पर जाकर क्रोध रूपी समुद्र को बाँध लूँ । और कुटिलता स्वरूप लंका को शीघ्र ही नाश करके मोह रूपी रावण को जीत लूँ । तथा निधनता स्वरूप

वीर-व्रत की आराधना में तत्पर होकर राम के समान मुक्ति रूपी सीता से संयुक्त हो जाऊँ ॥३७॥

औचित्याद् शुकशालिनीं हृदय ! रे शीलाङ्गरागोज्ज्वलां-
श्रद्धा ध्यानविवेकमण्डनवतीङ्कारुण्यहाराङ्किताम् ।
सद्बोधाञ्जनरञ्जिनीं परिलसच्चारित्रपत्रांकुरां-
निर्वाणं यदि वाञ्छसीह परमं क्षान्तिं प्रियां भावय ॥३८॥

भावार्थ—हे हृदय ! यदि तू वास्तव में निर्वाण-प्राप्ति की कामना करता है, तो औचित्य रूपी वस्त्रों से सुसज्जित शीलाङ्ग रूपी समुचित अनुराग से उज्ज्वल, श्रद्धा, ध्यान और सद् विचार रूपी आभूषणों से अलंकृत, करुणारूपी हार से सुशोभित सद्बोध रूपी अञ्जन से युक्त और सच्चारित्र रूपी पत्रांकुर से मण्डित, उत्तम क्षमा रूपी स्त्री को प्राप्त करने की भावना कर ॥३८॥

सत्यं बुद्बुद्भङ्गुरं धनमिदं दीपप्रकम्पं वपु-
स्तारुण्यं तरले क्षणात्तितरलं विद्यु च्चलं दोर्बलम् ।
रे रे जीव ! गुरुप्रसादवशतः किञ्चिद्विधेहि द्रुतं-
स्वात्मध्यानतपोविधानविषयं श्रेयः पवित्रं परम् ॥३९॥

भावार्थ—निस्सन्देह यह धन जल के बुद्-बुदे के समान, क्षणभंगुर है । शरीर, दीप-प्रकम्प के समान चञ्चल है । यह यौवन, स्त्री के नेत्र-कटाक्ष की तरह क्षणस्थायी है । और यह बाहुबल, चञ्चल चपला के सदृश अस्थिर अर्थात् चलायमान है । अतः हे

आत्मन्! सद्गुरु की कृपा द्वारा, तू आत्म-ध्यान तथा तप-संयम विषयक परम पवित्र विधान को सम्पादन कर के शीघ्र ही कुछ आत्म-कल्याण कर ले ॥३९॥

पिता–पुत्र-सम्वाद

आत्मध्यानरते समुद्यतमतिं श्रीटेकचन्द्रः पिता-
वात्सल्याब्धिनिषिक्तशुद्धमनसा वाणीमभाणीत्सुतम् ।
आशा ते महती ममास्ति मम तद्वृद्धस्थितिं पालय-
त्वं मद्गेहधुरं वहाहमधुना धर्मं करोमि स्थिरः ॥४०॥

भावार्थ—इस प्रकार अपने पुत्र श्री खूबचन्द्र जी की बुद्धि को आत्म-ध्यान में तल्लीन देख कर श्रीमान् सेठ टेकचन्द जी, प्रेम के महासागर में लीन हो गए। और मोह के वशीभूत हो कर अपने पुत्र से कहने लगे, कि हे पुत्र! मैं तो तुझ से बड़ी भारी आशा बान्धे बैठा हूँ। तू मुझ वृद्ध की स्थिति का पालन करते हुए, मेरे घर के भार को वहन कर, कि जिससे मैं अब इस सांसारिक पचड़े से विश्रान्ति लेकर धर्माराधना में तत्पर हो सकूँ ॥४०॥

वत्सत्वं मम जीवनं मम गृहस्तम्भः समर्थः पुन-
र्गार्हस्थ्यं परिपालयत्वमधुना संसेव्यशीलव्रतम् ।
भार्या सत्कुलजा पवित्रचरिता संसारशस्यावनिः,
कालेन फलवाञ्छया शुभमते! गार्हस्थ्यधर्मी भव ॥४१॥

भावार्थ—हे पुत्र! तुझे अब इस समय अपने शीलव्रत की समु-

चित रक्षा करते हुए गृहस्थ-धर्म को योग्य रीति से पालन करना चाहिए। हे वत्स! तू ही मेरे गृह का सुदृढ़ और सुन्दर मूल स्तंम्भ है। और तू ही मेरा जीवन है! हे सुमति-प्रवीण! तेरे घर में सत्कुलोत्पन्न, परम सदाचारिणी और सुपुत्र रत्न-प्रसविनी, रत्न-गर्भा वसुन्धरा के तुल्य, पतिव्रता भार्या है। अतएव, हे बेटा! तुझे फल की वान्छा सहित कुछ काल तक अवश्य ही गृहस्थ-धर्म का पालन करने में कटिबद्ध होना चाहिए॥४१॥

येनेह क्षणभङ्गुरेण वपुषा क्लिन्नेन सर्वात्मना-
सद्व्यापारनियोजितेन परमं निर्वाणमप्याप्यते।
प्रीतिस्तेन हहा पितः! प्रियतमा संपर्करागोद्भवा-
क्रीता स्वल्पसुखाय मूढमनसा कोट्या मया काकिणी॥४२

भावार्थ—अपने पूज्य पिता श्री टेकचन्दजी के वचनों को सुन कर श्री खूबचन्दजी उन से नम्रता पूर्वक निवेदन करने लगे, कि हे पूज्यपाद पिताजी! जिस क्षणभंगुर और घृणास्पद शरीर को अच्छे कार्य में लगाने से, मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। उसी शरीर को, स्त्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाले, क्षणिक सुख के लिए, प्रीति का पात्र बनाना, महान् भूल करना है। और यह भूल भी कोई साधारण भूल नहीं, किंतु एक करोड़ रुपये के बदले एक कौड़ी को खरीदने वाले व्यक्ति की भूल के समान महान् भयंकर भूल है॥४२॥

सौख्यं मित्रकलत्रपुत्रविभवं भ्रंशादिभिर्भङ्गुरं,
कासश्वासभगंदरादिभिरिदं व्याप्तं वपुर्व्याधिभिः ।
सर्वं पूर्णमुपैति सन्निधिमसौ कालः करालाननः,
कष्टं किंकरवाण्यहं तदपि यच्चित्तस्य पापे रतिः ॥४३॥

भावार्थ—पुनः हे पिता जी ! मित्र, स्त्री, और पुत्रादि के वैभव का सुख भी क्षणिक है। और यह शरीर भी खाँसी, श्वाँस, तथा भगंदरादि रोगों का अटूट भण्डार है। जिस समय इस देह को विकराल-काल ग्रसित करता है। उस समय बन्धु-बान्धवादि कोई भी कुटुम्बी सहायक नहीं हो सकता है। इतना जानते हुए भी आश्चर्य तो यह है, कि फिर भी सांसारिक प्राणी पाप-साधना में ही, खुशी-खुशी तत्पर रहते हैं। और आत्म-हित की ओर झाँकते तक नहीं हैं ॥४३॥

कारुण्यान्न सुधारसोऽस्ति हृदयद्रोहान्न हालाहलं-
वृत्तादस्ति न कल्पपादप इह क्रोधान्न दावानलः ।
संतोषादपरोऽस्ति न प्रियसुहृल्लोभान्न चान्योरिपु-
र्युक्तायुक्तमिदं मया निगदितं यद्रोचते तत्कुरु ॥४४॥

भावार्थ—दया से श्रेष्ट और कोई दूसरा अमृत नहीं है। वैर-भाव से अधिक अन्य कोई हलाहल विष नहीं है। लोभ के समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। और सन्तोष के समान अन्य कोई परम मित्र नहीं है। पिताजी ! यह सब युक्तिसंगत नम्र निवेदन मैंने

आपकी सेवा में कर दिया है। अतएव अब आप जैसा भी उचित समझें, वैसी आज्ञा प्रदान करें ॥४४॥

कवलयति समग्रं वस्तुजातं कृतान्तः,
अविरतकृतयत्नः क्रूरभावोपन्नः।
क्षणमपि न कदाचित्तस्य पार्श्वं गतस्य,
भवति मनसि जन्तौ नैव कारुण्यभावः ॥४५॥

भावार्थ—क्रूर भाव से संयुक्त हो कर जब मृत्यु सब वस्तुओं का संहार करती है। तब उस समय सब प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। अर्थात् मृत्यु के हृदय में, किसी भी प्राणी के प्रति दया का भाव उत्पन्न नहीं होता है ॥४५॥

शरीरं ममास्तीति मत्वा विमोहात्,
प्रसक्तिं दृढांमात्र कुर्याः कदाचित्।
मृदाः निर्मिताः पौद्गलाः सर्वभावाः-
स्वतत्वेषु लीनाः भवन्ति क्षणेन ॥४६॥

भावार्थ—मोह के वशीभूत हो, 'यह शरीर मेरा है' ऐसा मान कर किसी भी व्यक्ति को अपने शरीर से प्रेम नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह सब पौद्गलिक पदार्थ मिट्टी वगैरह पाँच तत्वों से बने हुए हैं। और क्षण-भर में अपने-अपने तत्वों में लीन हो जाते हैं ॥४६॥

तिमिरमतिनियन्त्री श्रीगुरुज्ञानगोष्टी,
भवजलनिधिनौका तत्कृपापूर्णदृष्टिः ।
विषयरतिविमुक्तिर्यत्र दानानुरक्तिः,
शमदमयमशक्तिर्मन्मथाराति भक्तिः ॥४७॥

भावार्थ—सद्गुरुओं की ज्ञान पूर्ण गोष्ठी, अज्ञानान्धकार को नष्ट कर देती है। उनकी कृपा-पूर्ण दृष्टि, संसार रूपी समुद्र के लिए नौका के समान है। विषय-प्रेम का त्याग ही दान है। शम,दम एवं यमादि की शक्ति का संचय करना तथा काम-शत्रु बनना ही वास्तविक भक्ति है ॥४७॥

श्रुतिमतिबलवीर्यप्रेमरूपायुरङ्ग-
स्वजनतनयकान्ता भ्रातृपित्रादिसर्वम् ।
तितउगतजलं वा न स्थिरं वीक्षतेऽङ्गी,
तदपि बत विमूढो नात्मकृत्यं करोति ॥४८॥

भावार्थ—श्रवण-शक्ति, बुद्धिबल, वीर्य, प्रेम, आयु और शरीर तथा अपने बन्धु-बांधव पुत्र, स्त्री, भाई और पितादि सब, चलनी में गए हुए जल के समान, अस्थिर हैं। किंतु खेद है, कि इस बात को जानते हुए भी, यह मूढ़ आत्मा, अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है ॥४८॥

जिनशुभपदभक्तिर्भावना जैनतत्वे,
विषयसुखविरक्तिर्मित्रता सत्ववर्गे ।

श्रुतिशमयमशक्तिर्मूकतान्यस्य दोषे,
मम भवतु सुबोधोयावदाप्नोमि मुक्तिम् ॥४९॥

भावार्थ—जब तक मैं मुक्ति को प्राप्त न कर लूँ, तब तक श्री जिनेश्वर भगवान् के कोमल चरणों के प्रति मेरी भक्ति बनी रहे। ज्ञान संयुक्त जैन धर्म के तत्वों में मेरी भावना बनी रहे। विषय-सुखों से विरक्ति और प्राणी मात्र के प्रति मित्रता के भाव बने रहे। मेरे हृदय में शम, यम तथा श्रुति का पूर्ण बल प्रकट हो। दूसरों के दोषों पर मेरी दृष्टि न पड़ने पावे। अर्थात् दूसरे व्यक्तियों के दोषों के सम्बन्ध में, मैं पूर्ण मौनावलम्बी बना रहूँ। और मेरी बुद्धि सदैव निर्मल बनी रहे ॥४९॥

सद्यः पातालमेति प्रविशति जलधिं गाहते देवगर्भं,
भुङ्क्तेभोगान्नराणाममरयुवतिभिः सङ्गमं याचते च।
वाञ्छत्यैश्वर्यमार्यमरिसमितिहतेः कीर्तिकान्तां ततश्च,
धृत्वा त्वं जीव! चित्तं स्थिरमतिचपलं स्वस्य कृत्यं कुरुष्व।

भावार्थ—हे जीव! तू शीघ्र ही कभी पाताल में प्रवेश करता है, कभी समुद्र में जन्म धारण करता है, तो कभी देवत्व को प्राप्त कर लेता है। फिर कभी मनुष्य के भोगों को भोगता है, तो कभी देवाङ्गनाओं के साथ संगम करने की प्रार्थना करने लग जाता है। कभी सम्पति की वाञ्छा करने लगता है, तो कभी शत्रुओं के संग्राम में मर कर भी कीर्ति रूपी कामिनी को प्राप्त कर लेता है।

इसलिए हे जीव! तू अपने इस अस्थिर-चंचल चित्त को सुस्थिर कर के उसे कर्त्तव्य परायण बना ॥५०॥

धर्मे चित्तं निधेहि श्रुतकथितविधिं जीवभक्त्या विधेहि,
सम्यक्स्वान्तं पुनीहि व्यसनकुसुमितं कामवृत्तं लुनीहि ।
पापे बुद्धिं धुनीहि प्रशमयमदमान् शिण्ढि पिण्ड प्रमादं,
छिन्धि क्रोधं विभिन्धि प्रचुरमदगिरस्तेऽस्ति चेन्मुक्ति वाञ्छा

भावार्थ—हे जीव! अपने चित्त में स्थिरता को धारण कर के शास्त्र-विहित-विधानों की भक्ति पूर्वक आराधना कर। और उस आराधना के द्वारा अपने चित्त और आत्मा को पवित्र बना डाल कुव्यसन स्वरूप पुष्पों से विकसित कामदेव तथा कामिनी स्वरूपी विष-वृक्ष को काट डाल। पाप-मार्ग से अपनी बुद्धि को हटा ले। महा मदों को शान्त करके प्रमाद का चूर्ण कर डाल। क्रोध को नष्ट-भ्रष्ट कर डाल। प्रचुर मद से भरे हुए वचनों को कभी उच्चारण न कर। इन सब नियमों का पालन करने पर ही तू मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। अन्यथा नहीं ॥५१॥

ज्ञानं तेऽद्य प्रबोधोजिनवचनरुचिर्दर्शनं धूतदोषं,
चारित्रं पापमुक्तं त्रयमिदमुदितं मुक्तिहेतु प्रधत्स्व ।
मुक्त्वा संसारहेतुतत्त्रितपमपरं निन्द्यबोधाद्यवद्यं,
रे रे जीवात्मवैरिन्! प्रचुरशिवसुखे चेत्तवेच्छास्ति पूते

भावार्थ—हे परमोज्ज्वल आत्मा के शत्रु! कर्म-पङ्क-दूषित

आत्मन्! यदि तुझे प्रचुर सुखों से परिपूर्ण शिव-सुख, प्राप्त करने की तीव्र उत्कण्ठा है, तो जिन-वाणी के प्रति अपनी प्रगाढ़ रुचि प्रकट करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और पाप रहित सम्यक् चारित्र इन तीनों रत्नों को सम्यक् प्रकार से धारण कर ले। क्योंकि ये तीनों रत्न रत्नत्रय-धर्म, के नाम से प्रख्यात् हैं। और यह "रत्न-त्रय-धर्म" मुक्ति के लिए हेतुभूत है। और इनके विपरीत कुदर्शन, कुज्ञान और कुचारित्र जो हैं, वे संसार के हेतुभूत हैं। अतः उन्हें शीघ्र ही छोड़ दे ॥५२॥

**रे पापिष्ठातिदुष्ट! व्यसनगतमते! निन्द्यकर्मप्रसक्त!**
**न्यायान्यायानभिज्ञ! प्रतिहतकरुण! व्यस्तसन्मार्गबुद्धे!**
**किं किं दुःखं न यातो विषयवशगतोयेनजीवोविपह्य,**
**त्वं तेनैनौतिवर्त्मप्रसभमिहमन्दोजैनतत्वे निधेहि ॥५३॥**

भावार्थ--हे पापिष्ट जीव! तू अत्यन्त दुष्ट है। रात-दिन कुव्यसनों के चक्कर में पड़ कर तू महान घृणित निंद्यकर्म करता रहता है। तू ने न्याय और अन्याय को तो कभी पहिचाना ही नहीं है। करुणा रहित हो कर सन्मार्ग को ग्रहण करने वाले हे आत्मन! तू ने विषयों के वशवर्ती होकर क्या क्या दुःख नहीं सहे? अर्थात् सभी महान् से महान् भयानक दुःखों का तू शिकार हो चुका है। इसलिए इनको सहन करता हुआ, अब तो तू पाप-पथ से विमुख होकर शीघ्र ही जैन धर्म के तत्वों का मनन करने में तत्पर हो जा।

कर्मानिष्टं विधत्ते भवति परवशो लज्जते नो जननां,
धर्माधर्मौ न वेत्ति त्यजति गुरुकुलं सेवते नीचलोकम् ।
भूत्वा प्राज्ञः कुलीनः प्रथितपृथुगुणो माननीयोबुधोऽपि-
तस्मात्त्वं कर्मवृन्दं झटिति मुनिपदं प्राप्यलोके विछिन्धि ।

भावार्थ—रे जीव ! तू अनिष्ट कृत्यों को करता हुआ भी सज्जनों की सभा में लज्जित नहीं होता है । सद्गुरुओं को छोड़ कर धर्माधर्म की अनभिज्ञता के कारण तू नीच लोकों की सेवा में ही सदैव तत्पर रहता है । अरे ! तुझे अपने इस दुष्कृत्यों के लिये जरा शर्म आनी चाहिये । प्राज्ञ, कुलीन, प्रसिद्ध महान् गुणों से विभूषित, माननीय विद्वान् हो कर भी तू ऐसे अधम कृत्य कर रहा है । यह नितान्त अनुचित और अवाञ्छनीय है । अतः अब तू इस असार संसार से अपना नेह-नाता तोड़ डाल । और मुनि-वृत्ति को स्वीकृत कर के अपने समस्त घनघाती कर्मों को समूल नष्ट कर डाल । यों भव-बन्धनों से विमुक्त हो कर शीघ्र ही क्यों नहीं मोक्ष-धाम में निवास कर लेता है ? ॥५४॥

या छेदभे ददमनाङ्कनदाहदोहो-
वातातपान्नजलरोधवधादिखेदा ।
मायावशेन मनुजोजननिन्दनीयां-
तिर्यग्गतिं व्रजति तामपि दुःखपूर्णाम् ॥५५॥

भावार्थ—यह जीव क्रोधादि कषायों के वशीभूत हो कर,

दुःखों से लबा-लब भरी हुई, महान् निन्दनीय नरकादि तीर्यंच गतियों को प्राप्त होता है। और वहाँ छेदन, भेदन, अङ्कन * और दाहन आदि महान् भयंकर दुःखों को सहन करता है। तथा वायु, आतप, अन्न और जल के रोधन एवं वधादि के द्वारा पूर्ण खेदावस्था को प्राप्त होता रहता है ॥५५॥

यत्र प्रियाप्रियवियोगसमागमान्य-
प्रेष्यत्व धान्यधनबान्धवहीनताद्यैः ।
दुःखं प्रयाति विविधं मनसाप्यसह्यं-
तं मर्त्यवासमधितिष्टति माययाङ्गी ॥५६॥

भावार्थ—माया के वश यह जीव, इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, धन-धान्य और बान्धवादि के निधन को सहन न कर सकने के कारण, महान् दुःखपूर्ण-जीवन प्राप्त करता है ॥५६॥

क्षणेन भङ्गत्वमुपागतेषु, भवाब्धिपूरे जनमज्जकेषु ।
संसारभोगेष्वधुना ममेदं, विरक्तिभावं विधति चेतः ॥५७॥

भावार्थ—सांसारिक सुखोपभोगों की यह समस्त सामग्रियाँ, इस क्षण-स्थायी संसार-समुद्र के प्रबल प्रवाह में डुबाने वाली है।

* लोहे का चिमटा, चाकू या और कोई ऐसी ही वस्तु को अग्नि में तप्त करके किसी भी व्यक्ति के शरीर पर गर्म-गर्म चिपका देने की क्रिया को अंकन कहते हैं। इस क्रिया को ग्रामीण-भाषा में 'डाम चढाना' भी कहते हैं।

नित्यं पर्यटनं गृहस्थसदनाऽधीनाशनं जीवनं-
काठिन्यं भवतीह ब्रह्मचरणं स्वल्पा न शान्तिस्थितिः ।
वैराग्ये न सुखं मनोऽब्धिलहरी भङ्गं च नो विद्यते-
गार्हस्थ्याश्रमपोषणेन तनय ! त्वं साधय स्वश्रियम् ॥६२॥

भावार्थ—वैराग्य में सुख नहीं है। क्योंकि साधुओं को सदैव इधर से उधर घूमना पड़ता है। उनका भोजन गृहस्थों के आधीन है। अर्थात् घर-घर भिक्षा मांगनी पड़ती है। और पूर्ण रुपेण ब्रह्मचर्यव्रत को धारण किये हुए रहना पड़ता है। अतः उस में शांतिपूर्ण स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। क्योंकि मन रूपी समुद्र में विषय सुख की कामना रूपी तरंगे उठ कर फिर वहीं विलीन हो जाती हैं। इसलिए हे पुत्र ! गृहस्थाश्रम में रह कर ही तू लक्ष्मी संचय करते हुए अपने जीवन को व्यतीत कर ॥६२॥

कालश्चेत्करुणापरः कलियुगं यद्यत्रधर्मप्रियं,
निस्त्रिंशोयदि पेशलोविषधरः सन्तोषदायी भवेत् ।
अग्निश्चेदतिशीतलः खलजनः सर्वोपकारी स चे-
द्गार्हस्थ्ये नहि साध्यते शृणुपितर्मुक्तिकदापि भवे ॥६३

भावार्थ—श्री खूबचन्द्रजी अपने पिता जी से कहने लगे, कि हे पिता जी ! यदि यम, दयालु हो जाय। कलियुग, धर्म-प्रिय हो जाय। तलवार अपनी तीक्ष्णता को छोड़ कर कोमल हो जाय। साँप, विष के बदले अमृत उगलने लग जाय। अग्नि अत्यंत शीतल

आदर्श चरितम्

प्रिय व्याख्यानी. श्रीमन्मुनि,

# श्री हीरालाल जी महाराज



( चित्र केवल परिचय के लिये है )

जन्म सं० १९६४, दीक्षा ( पिता-पुत्र साथ ) सं० १९७९

हो जाय। और दुष्ट जन भी अपनी दुष्टता को छोड़ कर उपकार करने लग जाय। तदपि यह सांसारिक तथा कौटुम्बिक मोह-जाल पूर्ण मोक्ष-मार्ग प्राप्त कराने के लिए कभी भी समर्थ नहीं हो सकता है ॥६३॥

मृत्युव्याघ्रभयङ्करानननगतं भीतं जराव्याधत-
स्तीव्रव्याधिदुरन्तदुःखतरुमत्संसारकांतारगम् ।
कः शक्नोति शरीरिणं त्रिभुवने पातुं नितांतातुरं,
त्यक्त्वा योगधनाश्रितं गुरुवरं जैनेद्रं वाक्यामृतम् ॥६४

भावार्थ—इस संसार में, मृत्यु रूपी सिंह के भयंकर मुख में गये हुए बुढ़ापे रूपी व्याध से भयभीत, तीव्र व्याधि स्वरूप वृक्ष से, संसार रूपी वन में प्राप्त, नितान्त आतुर, इस प्राणी के लिए, तीनों लोकों में, सद्गुरु तथा जैनेन्द्र वाक्य रूपी अमृत को छोड़ और कौन से योग्य धन का आश्रय हो सकता है ? ॥६४॥

अनेकभवसंचिता इह हि कर्मभिर्निर्मिता,
प्रियाप्रियवियोगसद्गमविपत्तिसम्पत्तयः ।
भवन्ति सकलास्त्विमा गतिषु सर्वदा देहिनां,
जरामरणवीचिभिः जननसागरमज्जताम् ॥६५॥

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्द जी अपने पुत्र श्री खूबचन्दजी से कहते हैं, कि—बेटा ! इस जीवन रूपी सागर में जन्म-मृत्यु रूपी उत्ताल तरङ्गों द्वारा डूबते हुए प्राणियों को कर्म-जनित संयोग-

वियोग और सम्पत्ति–विपत्ति प्राप्त होती ही रहती है । अतएव बेटा ! उसके लिए विचार करने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है । क्योंकि यह कोई नवीन बात तो है ही नहीं, कि जिसके लिए आश्चर्य प्रकट किया जाय ॥६५॥

विपत्तिसहिताः श्रियोऽसुखयुतं सुखं जन्मिनां,
वियोगपरिदूषिता जगति सद्गुरुसेवना ।
रजोरगबिलं वपुर्मरणनिन्दितदेहिनां,
तदप्ययमनारतं हतमतिर्भवेरज्यते ॥६६॥

भावार्थ—अपने पिता श्री टेकचन्द जी के उपरोक्त कथन को सुन कर श्री खूबचन्दजी कहने लगे, कि पूज्य पिता जी ! लक्ष्मी विपत्ति सहित है । सुख, दुःख से परिपूर्ण है । सद्गुरु-सेवा वियोग से दूषित है । और यह शरीर भी रज रूपी साँप के बिल की भाँति दूषित है । किंतु खेद है, कि इतना होते हुए भी यह प्राणी इस संसार में अनुरक्त रहता है ॥६६॥

स्रोतः सर्वज्ञनाथः सुरनतचरणोजायतेऽबाधबोध-
स्तस्मात्तीर्थं श्रुताख्यं जनहितकथकं मोक्षमार्गावबोधम् ।
तस्मात्तस्माद्विनाशोभयदुरिततते: सौख्यमस्माद्विबाधं,
बुद्ध्वैवं स्त्रीं सुरम्यां भवसुखकरणीं सज्जनः स्वीकरोति

भावार्थ—तत्पश्चात् पिता जी ने पुत्र को फिर समझाया, कि हे पुत्र ! देखो, देवताओं से भी पूज्य, पूर्णज्ञान-सम्पन्न, सर्वज्ञ देव

भी स्त्री से ही उत्पन्न होते हैं। जिन के द्वारा मनुष्य एवं प्राणी मात्र के हितकारक एवं मोक्ष-मार्ग-प्रदर्शक शास्त्रों का, एवं साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चारों तीर्थों का उद्घाटन होता है । और उन धर्म-शास्त्रों तथा तीर्थों से, हमें हमारे सम्पूर्ण पाप-तापों का विनाश होकर बाधा रहित सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। इसलिये हे पुत्र ! स्त्री को सच्चे सुख की देनेवाली और अच्छी समझ कर ही सज्जन पुरुष स्वीकार करते हैं ॥६७॥

सत्यं मन्त्री विपत्तौ भवति रतिविधौ दासिका या सुदक्षा,
लज्जालुः साविगीता गुरुजनविनता गेहनी गेहकृत्ये ।
भक्त्या पत्यौ सखीया स्वजनपरिजने धर्मकर्मैकनिष्ठा,
गार्हस्थ्ये साल्पपुण्यैः सकलगुणनिधिः प्राप्यते स्त्री न यमर्त्यैः

भावार्थ—हे पुत्र ! स्त्री आपत्ति के समय. मन्त्री का काम देती है। प्रेमानुराग में चतुर दासी का-सा कार्य करती है । लज्जा और शील संयुक्त, अनिन्दित गुरुजनों की विनय-भक्ति करनेवाली, गृहकार्यों में दक्ष, पति-भक्ति परायणा, स्वधर्म-कर्म में चतुर तथा स्वजन परिजनों से अनुराग रखनेवाली, सम्पूर्ण गुणों की खान स्त्री, मनुष्यों को स्वल्प पुण्यों से प्राप्त नहीं होती है। किन्तु महान् पुण्योदय से ही ऐसी सर्वगुण-सम्पन्न स्त्री प्राप्त होने का सौभाग्य मिलता है ॥६८॥

लब्धा या सुप्रबन्धा परमसुखरसा कोकिलालापजल्पा,

पुष्पास्रक् सौकुमार्या कुसुमशरवधूं रूपतोनिर्जयन्ती ।
सौख्यं सर्वेन्द्रियाणामभिमतमभितः कुर्वतीमानसेष्टं,
सत्सौभाग्या स्वपत्नी कथमपि सुत ! मे हीयतेऽत्र त्वयाद्य ।

भावार्थ— सुप्रबन्ध कर्त्री, सुखदात्री, कोकिल के समान सुमधुर कण्ठवाली, पुष्प-हार के समान सुकोमलाङ्गी, अपने अनुपम रूप से रति को भी लज्जित कर देनेवाली, समस्त इन्द्रियों को सुख पहुँचाने वाली, मनोनुकूल कार्य करनेवाली तथा परम सौभाग्यवती स्त्री, हे पुत्र ! तुझ से किस प्रकार छोड़ी जा रही है ? ॥६६॥

गृह–त्याग

संकल्पं सुदृढं कृतं निजपितुर्ज्ञात्वा युवानोवणिक्,
पुत्रोऽयं सुविचारतः समगमत्त्यक्त्वा स्वकीयं गृहम् ।
सौजन्यं गुणिसङ्गमिन्द्रियदमं दानं तपोभावनां,
वैराग्यं तनितुं पलायनपरं प्रेम्णास्व्याकार्षीत्तदा ॥७०॥

भावार्थ—इस प्रकार से तरुण खूबचन्द्रजी ने, अपने पिताजी के घर में रखने के संकल्प को, सुदृढ़ जान कर अपने घर को त्याग दिया। और अब इन्द्रिय-दमन, तपोभावना तथा वैराग्य को विस्तारित करने के लिए प्रेम-पूर्वक सद्गुणियों का संगम करना स्वीकार किया ॥७०॥

प्राटीन्नीमचकेऽप्यमुग्रविरतिः पश्चान्नानासास्थलं,
रागद्वेषविवर्जितः समगमन्नारायणाख्ये गढे ।

स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां शुचिमतिः श्रीमन्दसौरस्थले,
धर्मध्यानमनाऽभ्रमीद्विनयतः सज्जावरास्थानके ॥७१॥

भावार्थ—तदनन्तर हमारे चरित्रनायक, धर्म-ध्यान-परायण, वैराग्य-भावी श्री खूबचन्द्रजी ने संसार से विरक्त हो कर, शुद्ध-हृदय से पंच परमेष्ठी का स्मरण एवं ध्यान करते हुए नीमच की तरफ प्रस्थान किया। तथा वहाँ से मनासा, नारायणगढ़ और मन्दसौर होते हुए जावरा पहुँचे ॥७१॥

प्रावानीन्मुनिसत्तमान् शुभकरान् श्रीरत्नचन्द्रोज्ज्वल-
श्रीमज्जवाहरलालसौम्यचरित श्रीनन्दलालादिकान् ।
हीरालालपवित्रपादकमलं नत्वा च तत्रस्थले,
प्राश्रौषील्ललितं जिनेन्द्रचरितं व्याख्यानमुक्तिप्रदम् ॥७२॥

भावार्थ—जावरे पहुँच कर वहाँ मुनियों में श्रेष्ठ, शुभङ्कर, निर्ग्रंथ-मुनि श्री रत्नचन्द्रजी, श्री जवाहरलालजी एवं सौम्यचरित्री श्री नन्दलालजी तथा श्री हीरालालजी म० आदि मुनिवरों के चरण-कमलों को स्पर्श कर के नमस्कार किया। फिर उनके मुक्ति-पथ-प्रदर्शक एवं जिनेन्द्र के निर्मल चरित्र पर प्रकाश डालनेवाले ओजस्वी व्याख्यान को सुन कर फिर वहीं विश्राम किया ॥७२॥

सश्रद्धाभरभाजनं जिनपतेर्ध्यानं विधत्ते मुदा,
व्याख्यानामृतसिञ्चनेन सुधिया वैराग्यपूर्णक्रियाम् ।
अग्रेतां गजगामिनीं प्रियतमां पृष्टेऽपि तां सर्वदा,
धाग्र्यां तां गगनेऽपि तां किमपरं सर्वत्रतामीक्षते ॥७३॥

भावार्थ—अब श्री खूबचन्द्रजी इन निर्ग्रंथ-मुनियों की पावन सेवा में रह कर इनके व्याख्यानामृत से अपने हृदय-प्रदेश को सिंचित करने लगे। अतः इसके फलस्वरूप ये परम श्रद्धा-पूर्वक जिनेन्द्र-भक्ति-ध्यानारूढ़ होकर सुदृढ़ वैराग्य में ऐसे निमग्न हुए, कि हाथी के समान मस्त हो गये । और उन्हें आगे-पीछे पृथ्वी-मण्डल तथा आकाश-मण्डल आदि सभी स्थानों में वैराग्य-ही-वैराग्य दृष्टिगोचर होने लगा ॥७३॥

**श्रद्धानाम नरस्य शक्तिरधिका श्रद्धा सुखस्पन्दिनी,**
**संसाराभिधकानने विचरतां सन्देहविध्वंसिनी ।**
**श्रद्धा सर्वभयापहातनुभृतां शान्तिप्रदा सिद्धिदा,**
**श्रद्धैका सकलापदां भवरुजां दिव्यौषधं कामदम् ॥७४॥**

भावार्थ—श्रद्धा ही पुरुष की उत्तम शक्ति है। श्रद्धा ही कल्याण का परम सुन्दर रथ है । शुद्ध श्रद्धा के प्रभाव से ही संसार-रूपी वन में घूमनेवाले पुरुषों के सन्देहों का नाश होता है। श्रद्धा ही सब प्रकार के भयों से विमुक्त करने वाली, शरीर में अपूर्व शान्ति का प्रसार करने वाली तथा सकल सिद्धि प्रदा-यिनी है। यह श्रद्धा, एक ऐसी दिव्य और रामबाण औषधि है, कि जिसके द्वारा भव-रोगों का शमन तथा आपत्तियों का विनाश होता है ॥७४॥

**श्रद्धैवात्र प्रकर्तव्या, श्रद्धा सन्देहनाशिनी ।**
**श्रद्धा सौख्यकरी पुंसां, श्रद्धा मुक्तिप्रदायिनी ॥७५॥**

भावार्थ—यह श्रद्धा सब प्रकार के सन्देह को नष्ट-भृष्ट करने वाली और सौख्य तथा मुक्ति की देने वाली है। अतः प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है, कि वह शुद्ध श्रद्धा को अपने हृदय में स्थान दें ॥७५॥

श्रुत्वा स्वीयसुतस्य साधुशरणं श्रीटेकचन्द्रोवणिक्,
वात्सल्याश्रुभृतेक्षणोझटिति सः प्रायाच्च तत्र स्थले ।
नत्वा गद्गदभाषया मुनिवरान् प्रोवाचवाणीं सुत-
मीशान्त्र प्रभया गृहस्थसकलं कार्यं गुणिन्! पुत्र मे ॥

भावार्थ—श्रीमान् सेठ टेकचन्द्रजी ने, जब अपने प्रिय पुत्र श्री खूबचन्द्र जी के सम्बन्ध में यह समाचार सुने, कि वह साधुओं की शरण में रह कर वैराग्य-भाव में रमण कर रहा है, तो उनके नेत्रों से पुत्र-वात्सल्यता के नाते प्रेमाश्रु प्रवाहित हो चले। वे तत्क्षण ही जावरा पहुँचे। और वहाँ विराजित समस्त मुनि-संघ के पावन चरणों में वन्दन करने के पश्चात् वे गद्गद् हो कर अपने पुत्र से कहने लगे, कि हे पुत्र! तू गृहस्थाश्रम का कार्य कर ॥७६॥

गार्हस्थ्यानुपदाश्रयेण लभते मुक्तिं जनः श्रद्धया,
तच्छुभ्राशययोषितोऽस्ति सुत! मे योगाश्रमं मोक्षदम् ।
किं तत्त्वं परिदायपूर्णसुखदं योगे मतिं धीयसे,
संसारास्थितिकारणाय शुचिदां संसाप्नुहि स्वः श्रियम् ॥

भावार्थ—शुद्ध श्रद्धा पूर्वक गृहस्थ-धर्म का समुचित रूप से

पालन करते हुए भी मनुष्य मुक्ति-धाम को प्राप्त कर सकता है। ऐसे कल्याणकारी गृहस्थाश्रम को त्याग कर हे पुत्र ! तू वैराग्य वृत्ति में क्यों अपने चित्त को लगा रहा है ? संसार की सत्ता के कारण तू कुछ दिनों तक अवश्य ही गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए लक्ष्मी का संचय कर ॥७७॥

न संसारे किञ्चित्स्थिरमिह निजं वास्ति सकलम्,
किमुच्चार्यं रत्नत्रितयमनघं मुक्तिजनकम् ।
अहो मोहार्तानां तदपि विरतिर्नास्ति भविनां,
ततोमोक्षोपायाद्विमुखमनसां नास्ति कुशलम् ॥७८॥

भावार्थ–तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी ने अपने पूज्य पिता जी से कहा,कि पिताजी ! इस अस्थिर संसार में न तो कोई स्थिर ही है।और न कुछ अपना कोई निजी ही है। केवल निष्पाप रत्न-त्रय–धर्म ही आत्म-हितकारक और निजी है। और यही मुक्ति का देने वाला है। तो भी आप इस अस्थिर संसार से विरक्त नहीं होते हैं। इस प्रकार मोक्षोपाय से विमुख रहने के कारण ही आप को सुख प्राप्त नहीं होता है। और सदैव हाय ! हाय !! रूपी व्याकुलता ही बनी रहती है ॥७८॥

स यातोयात्येष स्फुटमयमहो पश्यति मृतिं,
परेषां यत्रैवं गणयति जनोनित्यमबुधः ।
महामोहाज्जातु सुतधनकलत्रादिविभवो,

न मृत्यु स्वासन्नं व्यपगतमतिः पश्यति पुनः॥७९॥

भावार्थ—इस संसार के प्राणी शरीर, धन, स्त्री आदि के मोह में फस कर प्रति दिन दूसरों की तरफ देखते हुए इस बात की गणना करते रहते हैं, कि 'वह मर गया, वह मर रहा है, एवं वह मरेगा, यह सब दृश्य देखते तथा जानते हुए भी वे मन्द बुद्धि बनकर यह विचार नहीं करते हैं, कि हमारे सिर पर भी मृत्यु मँडरा रही है और हम भी एक-न-एक दिन इस कराल काल के उदर में समा जायँगे ॥७९॥

श्रियोपायाद्यातास्तृणजलचरं जीवितमिदं,
मनश्चित्रं स्त्रीणां भुजगकुटिलं कामजसुखम् ।
क्षणध्वंसी कायः प्रकृतितरले यौवनधने,
इति ज्ञात्वा सन्तः स्थिरतरधियः श्रेयसिरताः ॥८०॥

भावार्थ—लक्ष्मी क्षण-स्थायी है। जीवन घास पर स्थित जल-बिन्दु के सदृश पल में नष्ट होने वाला है। शरीर भी क्षण-विनाशी है। और यौवन तथा धन तो स्वभाव से ही चञ्चल है। ऐसा जान, स्थिर बुद्धि वाले सज्जन अपने कल्याण में तत्पर होते हैं ॥८०॥

अनित्यं निस्त्राणं जननमरणव्याधिकलितं,
जगन्मिथ्यापाशैरहमहमिकालिङ्गितमिदम् ।
विचिन्त्यैवं सन्तोविमलमनसोधर्ममतय-
स्तपः कर्तुं वृतास्तदपसृतये जैनमनघम् ॥८१॥

पालन करते हुए भी मनुष्य मुक्ति-धाम को प्राप्त कर सकता है। ऐसे कल्याणकारी गृहस्थाश्रम को त्याग कर हे पुत्र ! तू वैराग्य वृत्ति में क्यों अपने चित्त को लगा रहा है ? संसार की सत्ता के कारण तू कुछ दिनों तक अवश्य ही गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए लक्ष्मी का संचय कर ॥७७॥

न संसारे किञ्चित्स्थिरमिह निजं वास्ति सकलम्,
किमुच्चार्यं रत्नत्रितयमनघं मुक्तिजनकम् ।
अहो मोहार्तानां तदपि विरतिर्नास्ति भविनां,
ततोमोक्षोपायाद्विमुखमनसां नास्ति कुशलम् ॥७८॥

भावार्थ–तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी ने अपने पूज्य पिता जी से कहा, कि पिताजी ! इस अस्थिर संसार में न तो कोई स्थिर ही है। और न कुछ अपना कोई निजी ही है। केवल निष्पाप रत्न-त्रय–धर्म ही आत्म-हितकारक और निजी है। और यही मुक्ति का देने वाला है। तो भी आप इस अस्थिर संसार से विरक्त नहीं होते हैं। इस प्रकार मोक्षोपाय से विमुख रहने के कारण ही आप को सुख प्राप्त नहीं होता है। और सदैव हाय ! हाय !! रूपी व्याकुलता ही बनी रहती है ॥७८॥

स यातोयात्येष स्फुटमयमहो पश्यति मृतिं,
परेषां यत्रैवं गणयति जनोनित्यमबुधः ।
महामोहाज्जातु सुतधनकलत्रादिविभवो,

न मृत्युं स्वासन्नं व्यपगतमतिः पश्यति पुनः॥७६॥

भावार्थ—इस संसार के प्राणी शरीर, धन, स्त्री आदि के मोह में फंस कर प्रति दिन दूसरों की तरफ देखते हुए इस बात की गणना करते रहते हैं, कि 'वह मर गया, वह मर रहा है, एवं वह मरेगा, यह सब दृश्य देखते तथा जानते हुए भी वे मन्द बुद्धि बनकर यह विचार नहीं करते हैं, कि हमारे सिर पर भी मृत्यु मँडरा रही है और हम भी एक-न-एक दिन इस कराल काल के उदर में समा जायँगे ॥७६॥

श्रियोपायाद्यातास्तृणजलचरं जीवितमिदं,
मनश्चित्रं स्त्रीणां भुजगकुटिलं कामजसुखम्।
क्षणध्वंसीकायः प्रकृतितरले यौवनधने,
इति ज्ञात्वा सन्तः स्थिरतरधियः श्रेयसिरताः॥८०॥

भावार्थ—लक्ष्मी क्षण-स्थायी है। जीवन घास पर स्थित जल-बिन्दु के सदृश पल में नष्ट होने वाला है। शरीर भी क्षण-विनाशी है। और यौवन तथा धन तो स्वभाव से ही चञ्चल है। ऐसा ज्ञान, स्थिर बुद्धि वाले सज्जन अपने कल्याण में तत्पर होते हैं॥८०॥

अनित्यं निस्सारं जननमरणव्याधिकलितं,
जगन्मिथ्यापाशैरहमहमिकालिङ्गितमिदम्।
विचिंत्यैवं सन्तोविमलमनसोधर्ममतय-
स्तपः कर्तुं वृतास्तदपसृतये जैनमनघम्॥८१॥

भावार्थ—यह संसार अनित्य है। यहां पर कोई किसी का रक्षक नहीं है। वृद्धावस्था मृत्यु रोग आदि से व्याप्त, मिथ्या पाशों से बद्ध है। और अहंकार से व्याप्त है। विमल चित्त वाले धार्मिक पुरुष ऐसा विचार कर, इस संसार से विरक्त हो जाते हैं। और जिनदेव द्वारा प्रतिपादित तपस्यादि अमूल्य धार्मिक कृत्यों में प्रवृत्त होते हैं॥८१॥

गलत्यायुर्देहे व्रजति विलयं रूपमखिलं,
जरा प्रत्यासन्नी भवति लभते व्याधिसदयम्।
कुटुम्बस्नेहार्तः प्रतिहतमतिर्मोहकलितो,
जनो जन्मोच्छित्यै तदपि कुरुते न प्रयतनम्॥८२॥

भावार्थ—मनुष्य की आयु दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। उत्तरोत्तर सम्पूर्ण सुन्दर रूप-यौवन विलुप्त होता जा रहा है। जब वृद्धावस्था समीप आती है, तो फिर आधि-व्याधियों का उदय होता है। परन्तु फिर भी यह कुटुम्ब के प्रेम में फँसा हुआ, मोह ग्रसित, बुद्धि-हीन मनुष्य, जन्म—मृत्यु रूपी व्याधि के विनाश के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करता है॥८२॥

भवन्त्येता लक्ष्म्यः कतिपयदिनान्येव सुखदा-
स्तरुण्यस्तारुण्ये विदधति मनः प्रीतिमतुलाम्।
तडिल्लोल्लाभोगा वपुरपि चलं व्याधिकलितं,
बुधाः संचिन्त्येति प्रगुणमनसो ब्रह्मणि रताः॥८३॥

भावार्थ—यह लक्ष्मी तो केवल यहीं कुछ दिनों के लिए सुख देने वाली होती है। यह तरुणी भी केवल इस युवावस्था में ही मन-हरण करने वाली बनकर अत्यन्त प्रीति की पात्रा होती है। सांसारिक सुख बिजली के समान चंचल है। और व्याधियों से भरा हुआ यह शरीर भी चलायमान् है। ऐसा विचार कर सज्जन पुरुष सदैव ब्रह्म-अर्थात् आत्म-सुख में संलग्न हो जाते हैं ॥८३॥

न कान्ता कान्ताते विरहशिखिनो दीर्घनयना,
न कान्ता भूपश्री जलधिलहरीवत्तरलिता।
न कान्तं ग्रस्तांतं भवति च जरायौवनमतः,
श्रयन्ते ते सन्तः स्थिरसुखमयीं मुक्तिवनिताम् ॥८४॥

भावार्थ—दीर्घ नेत्र वाली स्त्री विरह के प्राप्त होने पर अग्नि के समान हो जाती है। और कष्ट से प्राप्त की गई राज्य-लक्ष्मी भी समुद्र की तरंगों के समान चंचल है। यौवनावस्था का शारीरिक सौंदर्य भी वृद्धावस्था के आगमन के कारण नष्ट-भृष्ट और कुरूप हो जाता है। इसलिये सत्पुरुष स्थायी सुखों से परिपूर्ण मुक्ति रूपी स्त्री को ही अपने आधीन रखते हैं ॥८४॥

वस्त्राण्यादि परेण यत्र मिलनं भूमौ च शय्या तथा,
स्कंधे पुस्तकपात्रभारकरणं पौषादिकष्टं तथा।
शीतग्रीष्मयुतेपि पादचलनं कंटादिपूर्णे पथि,
तारुण्ये तपसे दृशोन भवतारकष्टं कथं सह्यते ॥८५॥

भावार्थ—यह संसार अनित्य है। यहां पर कोई किसी का रक्षक नहीं है। वृद्धावस्था मृत्यु रोग आदि से व्याप्त, मिथ्या पाशों से बद्ध है। और अहंकार से व्याप्त है। विमल चित्त वाले धार्मिक पुरुष ऐसा विचार कर, इस संसार से विरक्त हो जाते हैं। और जिनदेव द्वारा प्रतिपादित तपस्यादि अमूल्य धार्मिक कृत्यों में प्रवृत्त होते हैं॥८१॥

गलत्यायुर्देहे व्रजति विलयं रूपमखिलं,
जरा प्रत्यासन्नी भवति लभते व्याधिसदयम्।
कुटुम्बस्नेहार्तः प्रतिहतमतिर्मोहकलितो,
जनो जन्मोच्छित्यै तदपि कुरुते न प्रयतनम्॥८२॥

भावार्थ—मनुष्य की आयु दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। उत्तरोत्तर सम्पूर्ण सुन्दर रूप-यौवन विलुप्त होता जा रहा है। जब वृद्धावस्था समीप आती है, तो फिर आधि-व्याधियों का उदय होता है। परन्तु फिर भी यह कुटुम्ब के प्रेम में फँसा हुआ, मोह ग्रसित, बुद्धि-हीन मनुष्य, जन्म–मृत्यु रूपी व्याधि के विनाश के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करता है॥८२॥

भवन्त्येता लक्ष्म्यः कतिपयदिनान्येव सुखदा-
स्तरुण्यस्तारुण्ये विदधति मनः प्रीतिमतुलाम्।
तडिल्लोल्लाभोगा वपुरपि चलं व्याधिकलितं,
बुधाः संचिन्त्येति प्रगुणमनसो ब्रह्मणि रताः॥८३॥

भावार्थ—यह लक्ष्मी तो केवल यहीं कुछ दिनों के लिए सुख देने वाली होती है। यह तरुणी भी केवल इस युवावस्था में हीं मन-हरण करने वाली बनकर अत्यन्त प्रीति की पात्रा होती है। सांसारिक सुख बिजली के समान चंचल है। और व्याधियों से भरा हुआ यह शरीर भी चलायमान है। ऐसा विचार कर सज्जन पुरुष सदैव ब्रह्म-अर्थात् आत्म-सुख में संलग्न हो जाते हैं ॥८३॥

न कान्ता कान्ताते विरहशिखिनो दीर्घनयना,
न कान्ता भूपश्री जलधिलहरीवत्तरलिता।
न कान्तं ग्रस्तांतं भवति च जरायौवनमतः,
श्रयन्ते ते सन्तः स्थिरसुखमयीं मुक्तिवनिताम् ॥८४॥

भावार्थ—दीर्घ नेत्र वाली स्त्री विरह के प्राप्त होने पर अग्नि के समान हो जाती है। और कष्ट से प्राप्त की गई राज्य-लक्ष्मी भी समुद्र की तरंगों के समान चंचल है। यौवनावस्था का शारीरिक सौंदर्य भी वृद्धावस्था के आगमन के कारण नष्ट-भ्रष्ट और कुरूप हो जाता है। इसलिये सत्पुरुष स्थायी सुखों से परिपूर्ण मुक्ति रूपी स्त्री को ही अपने आधीन रखते हैं ॥८४॥

वस्त्राण्यादि परेण यत्र मिलनं भूमौ च शय्या तथा,
स्कंधे पुस्तकपात्रभारकरणं पौषादिकष्टं तथा।
शीतग्रीष्मयुतेपि पादचलनं कंटादिपूर्णे पथि,
तारुण्ये तपसे दृशेन भवतारकष्टं कथं सह्यते ॥८५॥

भावार्थ—तब उनके पिता कहने लगे, कि जिस मुनि-वृत्ति में वस्त्र भी दूसरों से उपलब्ध होते हैं। और पृथ्वी पर ही सोना पड़ता है। कन्धे पर पुस्तक एवं पात्रादि का भार लाद कर शीत ग्रीष्मादि के असह्य कष्टों को सहन करते हुए, कंटकाकीर्ण मार्ग में पैदल चलना पड़ता है। यों मुनि-अवस्था के तप और त्याग के द्वारा अपने लिए तू क्यों कष्टों को आमंत्रित कर रहा है?॥८५॥

क्रोधाद्युग्रचतुष्कषायचरणोऽन्यामोहहस्तः पितः,
रागद्वेषनिशातदीर्घदशनोदुर्वारमारोद्धुरः ।
सज्ज्ञानांकुशकौशलेन समहा मिथ्यात्वदुष्टःद्विपः,
नीतो येन वशंवशीकृतमिदं तेनैव विश्वत्रयम् ॥८६॥

भावार्थ—तब फिर पुत्र ने पिता जी से कहा, कि हे पिता जी! क्रोधादि चार कषाय रूपी चार पैर, मोह रूपी सूँड एवं राग-द्वेष रूपी दो बड़े लम्बे-लम्बे दाँत वाला तथा प्रबल काम-विकार रूपी मदसे उन्मत्त ममता रूपी गन्ध हस्ति को, जिस पुरुष ने अपने सद्ज्ञान रूपी अंकुश से वश में कर लिया है। उसने मानो तीनों लोकों को अपने वश में कर लिये हैं ॥८६॥

योगे पीनपयोधराश्रिततनोर्विच्छेदने बिभ्यताम्,
मानस्यावसरे चटूक्तिविधुरं दीन मुखं बिभ्रताम् ।
विक्षेपे स्मरवह्निना तु समयं दन्दह्यमानात्मनां,
रेरे सर्वदिशासु दुःखगहनं धिक्कामिनां जीवनम् ॥८७॥

भावार्थ—सुन्दर रूप वाली स्त्रियों के संयोग से मोहित, वियोग से भयभीत, रूठने से चापलूस और वियोगावस्था में दीनता पूर्वक कामाग्नि से निरंतर दग्ध रहने वाले लम्पटी पुरुषों का जीवन समस्त दिशाओं में सर्वथा दुःख से परिपूर्ण और धिक्कार का पात्र होता है ॥ ८७ ॥

**उद्गृणन्ति प्रपञ्चनेन, योषितो गद्गदां गिरम् ।**
**तासां मनन्ति प्रेमोक्तिं, कामग्रहिलचेतसः ॥८८॥**

भावार्थ—जिन मनुष्यों के चित्त काम से ग्रसित हो चुके हैं। वे ही मनुष्य विस्तार पूर्वक कही गई स्त्रियों की प्रेमपूर्ण गद्-गद् वाणी को ग्रहण करते हैं। किंतु बुद्धिमान् मनुष्य कदापि ऐसा नहीं करते हैं ॥८८॥

**यथा पतङ्गा ज्वलिते प्रदीपे, विवृद्धवेगाः सुतरांप्रमत्ताः ।**
**सुदुस्सहं दारुणदुर्विपाकं, अचिन्तयन्तः प्रपतन्ति रागात् ॥**

भावार्थ—जिस प्रकार रागाधीन पतंग, जलते हुए दीपक में अपने को जला देता है। उसी प्रकार मोह से उन्मत्त प्राणी भी दुःसह दारुण राग के परिणाम को न विचारते हुए अपने को राग रूपी अग्नि में भस्मीभूत कर डालते है ॥८९॥

**तथा मनुष्या अपि लोलुपत्वा-द्विवेकहीना मदनाभिभूताः।**
**अनन्तदुःखार्णवतुल्यमानं, विशन्ति जालं विषयाभिधानम्**

भावार्थ—और वे अज्ञानी जीव लोलुपता के वशीभूत हो कर

विवेक एवं विचार रहित काम-विकार से ग्रसित अनंत दुःखों के समुद्र विषय-जाल में फँस कर घोर दुःख को प्राप्त होते हैं ॥६०॥

**योगरससिंहगर्जितघोररवभयाभिभूतहृदयास्ते ।**
**षाड्रिपवोहरिणसमा भ्रान्तादिशि पलायिता गहने ॥६१॥**

भावार्थ—योग रूपी सिंह की भयंकर गर्जना को सुन कर काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद तथा मत्सर स्वरूप यह छहों मृग भयभीत हो जाते हैं। और संसार रूपी वन में भागने लग जाते हैं ॥६१॥

**प्रायात्पूतगृहेसु योगनिपुणः श्रीजावरास्थानक,**
**सङ्घाज्ञां परिधीत्यशुद्धमनसां कर्तुं स्वयोगं दृढम् ।**
**मातृभ्रातृनिजाङ्गनासुभगिनीवापादिसम्बन्धिनो,**
**नेतुं तं च गृहस्थधर्ममुचितं प्राहुर्महायत्नतः ॥६२॥**

भावार्थ—जावरा संघ की आज्ञानुकूल हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द जी ने साधु-वृत्ति ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए अपने जन्म-स्थान निम्बाहेड़ा की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुंचते ही उन्हें उनके माता-पिता, भाई-बहिन और स्त्री आदि कुटुम्बी जन ग्रहस्थाश्रम पालन करने के लिए समझाने लगे ॥६२॥

पति-पत्नि-सम्वाद

**पत्नीसाकरवा समीक्ष्य रमणं योगाधिरूढं तदा,**
**नेत्राश्रूदकतः अपूज्यचरणं प्रावीवदत्स्नेहतः ।**

नाथ ! त्वद्विरहोऽधुना हिमरुचिश्चण्डाङ्गशुलत्तायते,
हेमन्तस्य हिमानलोऽपि दहनज्वालावलीलायते ॥६३॥

भावार्थ—तदनंतर सौभाग्यवती श्री साकरदेवी ने अपने पति श्री खूबचन्द जी को इस प्रकार वैराग्यारूढ देख कर अपने अश्रुपात से चरण धोते हुए स्नेह पूर्वक कहा, कि हे नाथ ! इस समय तुम्हारे विरह से चन्द्रमा शीतल होते हुए भी सूर्य के समान उष्ण संतापकारी मालूम होता है। और हेम ऋतु की शीतल पवन भी अग्नि के समान शरीर को दग्ध करती है॥ ६३ ॥

न स्नेहः कुसुमे सुखं न भवने प्रेमा न पङ्केरुहे,
न प्रीतिः पवने रतिर्न भुवने यत्नोन वा जीवने ।
चित्तं त्वद्विरहेण हन्त हरिणी रूपायते सर्वदा,
मेहर्म्योऽपि यमायते विरचय च्छार्दूलविक्रीडितम् ॥६४॥

भावार्थ—इस समय मुझ को फूल के प्रति स्नेह, संसार में सुख, कमल में प्रेम, पवन में प्रीति, रस में राग, और जीवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करना भी, अच्छा मालूम नहीं होता है। आपके विरह से यह चित्त, हिरणी के समान आचरण कर रहा है। और यह घर सिंह के रूप को धारण करता हुआ यम के समान आचरण कर रहा है ॥६४॥

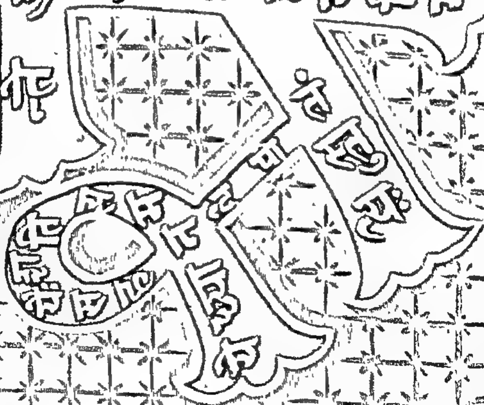
शश्वन्मायां करोति स्थिरमति न मनो मन्यते नोपकारं
या वाक्यं वक्तयसत्यं मलिनयति कुलं कीर्तिवल्लीं लुनाति

सर्वारम्भैकहेतुर्विरतिसुखरतिध्वंसिनी निन्दनीया,
तां धर्मारामभङ्क्त्रीं भजति न मनुजोमानिनीं मान्यबुद्धिः ॥

भावार्थ—तब श्री खूबचंद जी कहने लगे, कि स्त्री सदैव छल-कपट करती है। मोह-माया का जाल फैलाती है। मन को चंचल बना डालती है। और फिर यह असत्य-भाषिणी, कुलांगारिणी, मोक्ष-सुख-भञ्जक, कृतघ्न, निन्दनीय, कीर्ति रूपी लता को काटने वाली, परिग्रह की मूल जड़, तथा धर्म रूपी उद्यान को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली है। अतः समझदार व्यक्ति, स्त्री को कदापि धारण नहीं करते हैं ॥६५॥

सेवां या संविधत्ते सुखमुपचिनुते प्रीतिमाविष्करोति,
सत्पात्राहारदानप्रभववरवृषस्यास्तदोषस्य हेतुः ।
वंशाभ्युद्धारकर्तु भवति तनुभुवः कारणं कान्तकीर्ति-
स्तत्सर्वाभीष्ठदान प्रवदत न कथं प्रार्थ्यते स्त्रीसु रत्नम् ॥

भावार्थ—तब उनकी स्त्री उन से कहने लगी, कि प्राणनाथ ! स्त्री, सेवा-धर्म बजाने वाली सुख, का संचय करने वाली, प्रीति को प्रकट करने वाली तथा सत्पात्र-मुनि आदि को आहार-दान द्वारा उत्पन्न पुण्य का कारण होती है। और संतानोत्पत्ति द्वारा वंश की अभिवृद्धि का कारण होती है। स्त्री पति के लिये कीर्ति स्वरूप है। अतः हे नाथ ! आप इस प्रकार के सब सम्पूर्ण अभीष्ट को सिद्ध करने वाले स्त्री-रत्न को क्यों नहीं चाहते हैं ?॥६६॥



छायावद्यानवद्या चिररुचिचपला खड्गधारेवतीक्ष्णा,
बुद्धिर्वा लुब्धकस्य प्रतिहतकरुणा व्याधिवन्नित्यदुःखा ।
वक्रावासर्परीतिः कुनृपगतिरिवावद्यकृत्यप्रचारा,
चित्रावाशक्रचापं भवचकितबुधैः सेव्यते स्त्रीकथं सा ॥

भावार्थ—तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द जी कहने लगे, कि जो स्त्री चाण्डाल की छाया के समान घृणास्पद, बिजली के समान चंचल, तलवार की धार के समान तीक्ष्ण, व्याघ्र की बुद्धि के समान करुणा-विहीन, व्याध के समान नित्य ही दुःखों से परिपूर्ण, विकराल साँप के समान कुटिल, दुष्ट नृपति के समान निंद्य नीति की प्रचारिका और इन्द्र-धनुष के समान चित्र-विचित्र वर्ण वाली होती है। ऐसी स्त्री संसार से भयभीत होने वाले पुरुषों द्वारा कैसे ग्रहण की जा सकती है? अर्थात् कदापि नहीं ॥६७॥

चन्द्रज्योत्स्नासमानं मनुजवनितयोर्युग्मका लोकमध्ये,
दृश्यन्ते स्फारहाराः सुखवरदकराः सर्वदा सर्वसाराः ।
संसाराऽनल्पकराः सदनभयहराश्चिद्घनैकावतारा-
स्ताराःशृङ्गारधारानिगमनिधिभरास्त्रस्तधम्मिल्लभराः ॥

भावार्थ—तब उनकी स्त्री ने कहा-जिस प्रकार संसार में चंद्रमा और चाँदनी का सदा से जोड़ा देखा जाता है। उसी प्रकार स्त्री और पुरुष की यह परम सुन्दर जोड़ी भी उत्तम सुखों को सम्पादन करनेवाली, सुन्दराकार वाली, मकान के सब प्रकार के भयों को

निवारण करने वाली, चिद्धन के एक अवतार के समान चंचल शृंगार की धारा स्वरूप, शास्त्र के तत्वों से भरपूर और ढ़ीले केश-पाश की रचना वाली देखी जाती है ॥६८॥

न दृष्टं स्त्रीभ्योऽन्यत्क्वचिदपि महच्चास्ति ललितं,
सदादृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननम् ।
तदर्थे धर्मार्थं विभववरसौख्यानि च ततो,
गृहे लक्ष्मीर्मान्याः सततमबलामानविभवैः ॥६९॥

भावार्थ—हे हृदयेश ! संसार में स्त्री-रत्न के समान सुख देने वाला और कोई अन्य रत्न न तो सुना, न देखा और न किसी ने सम्पादन ही किया है । इस स्त्री के लिए ही सब धर्म और सम्पत्ति का उपार्जन किया जाता है। जिस घर में स्त्रियों का आदर होता है, उस घर में लक्ष्मी निवास करती है । और सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं ॥६९॥

दयादानं श्रद्धा परधनपरस्त्रीविमुखता,
क्षमासत्यं जैनप्रमितगुरुसेवाशुभकरा ।
अनौद्धत्यं तृष्णा नियमनमनङ्गाविकलता,
जनानां गार्हस्थ्यं भवति शुभमेयं सुखकरम् ॥१००॥

भावार्थ—दया, दान और श्रद्धा में तत्पर रहने वाला, धन और पर स्त्री से विमुख रहने वाला, क्षमा, सत्य, और जैन धर्म के प्रति प्रगाढ़ रुचि रखनेवाला, उद्दण्डता रहित, तृष्णा को रोकते

हुए गुरु की सेवा करनेवाले और काम-सेवन के लिए विकल न रहने वाले व्यक्ति का गार्हस्थ्य जीवन ही अत्यन्त सुख का देने वाला है ॥१००॥

भवन्तः सद्योगप्रणिहितधियामत्रगुरवो,
विदग्धालापानामहमपि पदाब्जासशरणा ।
यथाप्येतत्स्वामिन्नहि परहितात्पुण्यमधिकम्,
तथास्मिन्संसारे कुवलयदृशः सौख्यमधिकम् ॥१०१॥

भावार्थ—हे स्वामिन ! यद्यपि आप आत्म-ध्यान में लीन सद्गुरुओं के चरण-कमल की सेवा करते हुए उनके दिव्य उपदेश की प्राप्ति द्वारा बड़े भारी पुण्य का संचय कर रहे हो। और इस संसार में परोपकार से बढ़कर अन्य कोई पुण्य नहीं है। यह बात बिलकुल सत्य है। किन्तु संसार में स्त्रियों से जो सुख प्राप्त होता है, उससे अधिक सुख भी कोई नहीं हो सकता है ॥१०१॥

त्वगस्थिरुधिरामिषैः प्रचुरगूथमूत्रादिकैः,
भृतां जगति वेदितां सकलदोषसीमां स्त्रियम् ।
अनङ्गशरजर्जरीकृतकलेवरे कातरो-
नरो जडमतिर्मुहुःप्रियतमेति संभाषते ॥१०२॥

भावार्थ—तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्र जी ने कहा, कि छिः ! छिः ! चमड़ी, हड्डी, रुधिर, मांस, विष्ठा और मूत्रादि से भरी हुई सकल दोष की खान स्त्री को काम स्वरूप बाण से

जर्जरित शरीर वाला, कायर, मूर्ख और कामी पुरुष ही बार-बार प्रियतमा शब्द से सम्बोधित करता है ॥१०२॥

नारीणां सुकलेवरं विरचितं सत्यं त्वया भाषितम्-
त्वग्मांसक्षतजास्थिवीर्यविकृति प्रायेण निर्धारितम् ।
लालामूत्रपुरीषपोषितवपा श्लेष्मादिभिर्भोपते !
एवं पूरुषदेहरम्यरचना तद्वस्तुभिः पूरिता ॥१०३॥

भावार्थ— तब इनकी स्त्री ने कहा, कि हे स्वामिन् ! स्त्रियों का शरीर चमड़ी, मांस, रक्त, हड्डी आदि से व्याप्त है । यह आपने बिलकुल ठीक कहा है । परन्तु रम्य पुरुषों का शरीर भी तो इन्हीं वस्तुओं से भरा हुआ है ॥१०३॥

अनेकमलसंभवे कृमिकुलैः सदा संकुले,
विचित्रबहुवेदने बुद्धविनिन्दिते दुःसहे ।
भ्रमन्नयमनारतं व्यसनसंकटे देहवान्,
पुरार्जितवशोभवे भवति भाविनि गर्भके ॥१०४॥
शरीरमसुखावहं विविधदोषवर्चोगृहम्,
सशुक्ररुधिरोद्भवं भवभृता भवे भ्राम्यते ।
प्रगृह्य भवसंसृतेर्विदधता निमित्तं विधम्,
सरागमनसासुखं प्रचुरमिच्छता तत्कृते ॥१०५॥
किमस्य सुखमादितो भवति देहिनो गर्भके,
किमङ्ग ! मलभक्षणप्रभृतिदूषिते शैशवे ।

क्रिमङ्गजकृतासुखव्यसनपीडिते यौवने,
किमङ्गगुणमर्दनक्षमजराहते वार्धिके ॥१०६॥
किमत्र विरसे सुखं दयितकामिनी सेवने,
किमन्यजनसङ्गमे द्रविणसञ्चयनश्वरे ।
किमस्ति भुवि भंगुरे तनयदर्शने वा भवे,
यतोऽत्र गतचेतसा तनुमता रतिर्बध्यते ॥१०७॥
इदं स्वजनदेहजं तनयमातृभार्यामयम,
विचित्रमिह केन चिद्रचितमिन्द्रजालं तनु ।
क कस्य कथमत्रको भवति तत्वोतोदेहिनः,
स्वकर्मवशवर्तिनस्त्रिभुवने निजो वा परः ॥१०८॥
हृषीकविषयं सुखं किमिह यन्न भुक्तं भवे,
किमिच्छति नरः परं सुखमपूर्वभूतं तनुः ।
कुतूहलमपूर्वजं भवति नाङ्गिनोऽस्यास्ति चेत्,
समैकसुखसङ्ग्रहे किमपि नो विधत्ते मनः ॥१०९॥
क्षणेन शमवानतोभवति कोपवान् संसृतौ,
विवेकविकलः शिशुर्विरहकातरो वा युवा ।
जरार्दिततनुस्तदा विगतसर्वचेष्टोजरी,
दधाति नटवन्नरः प्रचुरवेपरूपं वपुः ॥११०॥

भावार्थ—इस प्रकार स्त्री का उत्तर सुन कर उन्होंने उसे कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। वे मौन रहे। अब उनके हृदय में

वैराग्य के पूर्ण भाव जागृत हो गये। वे संसार की असारता की तरफ दृष्टिपात करते हुए तनिक विचार कर कहने लगे, कि पूर्वोपार्जित कर्मों के वश प्राणी संसार में भ्रमण करता हुआ अनेक प्रकार के मल से परिपूर्ण, कृमि-कुल से व्याप्त, नाना भाँति की व्याधियों के मंदिर, व्यसन-ग्रसित, स्त्री के गर्भ में निवास करता है। और अनेक दुःखों को प्राप्त करता है ॥ १०४ ॥ सांसारिक प्राणी सरागी अर्थात् मोह के वशीभूत होकर, संसार में भ्रमण करता हुआ, भव-संतति के कारण दुष्कर्मों का उपार्जन करता है। और प्रचुर सुख की इच्छा करता हुआ, दुखों से पूर्ण अनेक दोषों के भवन शरीर को धारण करके संसार मे भ्रमण करता फिरता है। विचारने की बात है, कि प्रारम्भ में ही माता के गर्भ में इसको क्या सुख मिला? बाल्यावस्था में गर्भ में केवल अपवित्र मलादि भक्षण किया। और काम-व्यसन-पीडित युवावस्था में इसे क्या हर्ष प्राप्त हुआ? फिर इसी प्रकार अङ्गों को शिथिल करने वाली वृद्धावस्था में कष्ट के सिवाय और क्या सुख मिला? ॥१०५–१०६॥ इस रस-हीन संसार में, स्त्री भोग-विलास में, अन्य-जन के संगम में, क्षण-स्थायी धन के संचय एवं विनाश में, और विनाशशील पुत्र-पौत्रादिक संतति के दर्शन में, ऐसा कौन सा सुख है? कि जिसके कारण मूर्ख व्यक्ति माया-जाल में फँसकर बँध जाता है। यह स्व-जन, परिजन, पुत्र, माता और स्त्री मय विचित्र इन्द्रजाल, संसार में न जाने किसने बना दिया है! वास्तव

में यदि तथ्य-पूर्वक विचारा जाय, तो विदित होगा, कि इस संसार में कोई किसी का नहीं है। अकेला जीव ही कर्म-वश भ्रमण करता है ॥१०७-१०८॥ इस संसार में आत्मा के लिए ऐसा कौन-सा इन्द्रिय-विषयक सुख है, जो कि अभी तक इसके द्वारा नहीं भोगा गया है? ऐसा कौन-सा सुख है, जो पहले. नहीं भोगा गया? और जिसके लिए यह लालायित रहा करता है। मुझे यह बड़ा भारी कौतुक नजर आता है, कि इस प्राणी का मन सदा-सर्वदा समान रहने वाले मुक्ति-सुख में क्यों नहीं लगता है? ॥१०६॥ यह प्राणी नट के समान अनेक रूपों को धारण करता है। कभी शांतचित्त हो जाता है, तो कभी महा क्रोधी बन जाता है। कभी विचार-शून्य बालक हो जाता है,तो कभी विरहसे पीड़ित युवावस्था को धारण कर लेता है। और कभी वृद्धावस्था से दुःखित हो जाता है। श्री खूबचन्द्र जी के इस विचार को सुन कर उनकी स्त्री श्री साकरदेवी ने कहा, कि स्त्री, सौन्दर्य की नदी युवावस्था के हर्षो-द्भव का स्थान है। अतः स्त्री पुरुषों से त्याज्य होना कठिन है। ॥११०॥ इसके उत्तर में हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी ने निम्न पद्याङ्कित, भाव-गम्भीर उत्तर दिया।

यद्येतास्तरले क्षणा युवतयो न स्युर्गलद्यौवनाः,
मूर्तिर्वा यदि भूभृतां भवति नो सौदामिनी सन्निभाः।
वातोद्धूततरङ्गचञ्चलमिदं नो चेद्भवेज्जीवितम्,
कोनामेह तदेव सौख्यविमुखः कुर्याज्जिनोक्तं वचः ॥१॥

यावत्सा प्रियभाषिणी स्मितमुखी भर्तृप्रमोदप्रदा,
यावन्नो ग्रसते करालवदना क्रूरा जरा राक्षसी।
सौभाग्यानुगुणं सदा गतभयं पीयूषपूर्णं परं,
कर्तव्यं जिनदेवतासमुदितं मोक्षाय पूर्णं तपः ॥११२॥
मृत्युव्याघ्रभयङ्करानगतं भीतं जरा व्याघ्रत-
स्तीव्रव्याधिदुरन्तदुःखतरूमत्संसारकान्तारगम् ।
देहं मे शृणु सुन्दरि ! व्यसनजं पातुं नितान्तातुरम्,
प्रेम्णाहं वरिताऽस्मि साधुशरणं संसारजन्मार्तिहम् ॥॥

भावार्थ--यदि चंचल नेत्र वाली स्त्रियाँ वृद्धा न हों, राजाओं की सम्पत्ति भी बिजली के समान क्षणभंगुर न हो, तथा वायु की प्रबल लहर के समान यह जीवन चञ्चल न हो, तो फिर किसी भी प्राणी के लिए इन सांसारिक सुखों से विमुख हो कर जिनदेव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के पालन करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। जब तक भयंकर मुखवाली क्रूर वृद्धावस्था रूपी राक्षसी मनुष्य को ग्रसित नहीं करती, तब तक श्रेष्ट पुरुषों का कर्त्तव्य है, कि वे जिनेंद्र भगवान द्वारा प्रतिपादित, पुण्योदय के सूचक, भव-भय-संहारक, पियूष-धारा के समान सरस सुखप्रद तप-त्याग-विधान की आराधना द्वारा मोक्ष-धाम को प्राप्त करें।१११-११२॥ हे सुन्दरी ! तीव्र व्याधि और दुःख रूपी वृक्षों से आच्छादित इस संसार रूपी वन में भटकता हुआ यह मेरा शरीर वृद्धावस्था रूपी व्याघ से भयभीत हो रहा है। और मृत्यु रूपी सिंह के

सुख का ग्रास बनने वाला है। अतः इस व्याकुलता से सुरक्षित रहने के लिए मैंने ऐसे साधुओं की शरण ग्रहण की है, कि जो प्रेम पूर्वक सांसारिक जन्म-मृत्यु की पीड़ा को नष्ट करने वाले हैं ॥११३॥

लक्ष्मीं लावण्ययुतां पुरुषो हृष्यति यथा मुदा दृष्ट्वा ।
एवं हृदि निवसन्तं ध्यात्वा जिनमिह भवेद्बुधो मुदितः

भावार्थ—जिस प्रकार लावण्यवती स्त्री को देख कर तरुण पुरुष प्रसन्न होता है, उसी प्रकार अपने शुद्ध हृदय द्वारा ध्यानस्थ होकर श्री जिनेश्वर भगवान् के वास्तविक स्वरूप के दर्शन करते हुए विद्वान् पुरुष प्रसन्न होते हैं ॥११४॥

वायुना चाल्यमानस्य स्थैर्यं दीपस्य दुर्लभम् ।
एवं वैराग्यहीनस्य दृढभक्तिरपोहिता ॥११५॥
न वैराग्याद्विना मुक्तिर्भक्तियोगः कदाचन ।
विषयैर्भ्राम्यमाणस्य मनसः स्थिरता कथम् ॥११६॥

भावार्थ—जिस प्रकार पवन के प्रबल थपेड़ों से चलायमान् (बुझने वाला) दीपक स्थिर होना दुर्लभ है। उसी प्रकार वैराग्य-हीन व्यक्तियों के हृदय में भक्ति-भाव की दृढ़ता का संचार होना भी दुर्लभ है ॥११५॥ वैराग्य के अभाव में भक्ति, ध्यान, तप और मुक्ति आदि कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। रात-दिन विषय-वासनाओं में भ्रमण करनेवाले व्यक्तियों के मनकी स्थिरता बिना वैराग्य के किसी भी प्रकार नहीं हो सकती है ॥११६॥

रज्यद्बिम्बाधरश्रीपिशितसवलितं रोमराजीवसूत्रम्,
भ्रूवल्लिक्षेपकालायसवडिशमिदं तत्कटाक्षोपकर्णिम् ।
अस्यां संसारनद्यां विसरतिकुतुकी निर्दयोऽयं कृतान्त-
स्तद्ग्रासोल्लासधारां परिहरत परं भ्रातरोलोकमीनाः ॥
नाहं कस्यापि कश्चिन्न च मम ममता नाशमूलं किलैत-
न्नित्यं चित्ते भ्रियध्वं यदि जगदखिलं नाममिथ्येति बुद्धिः!
एतस्याहं समैतद्यदि मनसि तदा जन्मकर्माद्रियध्वम्,
मन्यध्वं गर्भचर्मा वृत्तिमभयपदं किन्तु पुण्यं कुरुध्वम् ॥

भावार्थ—इस संसार रूपी नदी में, यह मृत्यु रूपी निर्दयी धीवर, स्त्री के मांस संयुक्त रक्तवर्ण वाले अधर स्वरूपी फल को, भृकुटियों के कटाक्ष रूपी काँटों से संयुक्त, रोमावली रूपी भयंकर कन्टकाकीर्ण जाल में डाल कर इस प्राणी रूपी मछली को प्रलो-भन में डालता है। और जब यह प्राणी रूपी मछली उस जाल में फँस जाती है। तब मृत्यु रूपी धीवर उसे पकड़ कर काल का ग्रास बना लेता है ॥११७॥ इस संसार में न तो मैं ही किसी का हो सका हूँ, और न मेरा ही कोई हो सका है। यह चित्त में धारण की हुई मोह और ममता ही मेरा और तेरा भाव उत्पन्न कराती है। इस भयङ्कर जन्म-मरण के दुःख को देनेवाले एवं संसार में जीव को भ्रमण करानेवाले मोह को छोड़ कर जन्म और मरण के भय से रहित कर्म का विनाश करके आनन्द-पूर्ण चिन्मय मुक्ति की प्राप्ति का उपाय करना ही श्रेयस्कर है ॥११८॥

पितृभ्रातृसपिण्डबान्धवगणप्रौढप्रभावाग्रणी:-
आरावद्द्रुतमिष्टयोगनिपुणः प्रायात्पुरे ब्यावरे।
श्रीसिद्धार्थनरेशवंशसरसीजन्माब्जिनीवल्लभ-
ध्यानेनानयत्स्वकीयसमयं मुक्तिश्रियं वेदिनम् ॥११६॥
किं लोलाक्षिकटाक्षलम्पटतया किं स्तम्भजृम्भादिभि:-
किं प्रत्यङ्गनिदर्शनोत्सुकतया किं प्रोलसच्चाटुभिः।
आत्मानं प्रतिबाधसे त्वमधुना व्यर्थं मदर्थं यतः-
शुद्धध्यानमहारसायनरसे लीनं मदीयं मनः ॥१२०॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक प्रौढ प्रभावशाली श्री खूबचन्द्र-जी, अपने पिता, भाई आदि सम्बन्धी-जनों के करुणा-जनक वाक्यों को सुन कर भी अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। और वे वहाँ से शीघ्र ही ब्यावर चले गये। वहाँ पर वे वीर प्रभु के ध्यान में अपने समय को व्यतीत करने लगे। यों, श्री महावीर प्रभु के ध्यान में निमग्न होकर वे अब तृष्णा के प्रति कहने लगे, कि हे तृष्णे! तू चपल नेत्र-कटाक्ष वाली हाव-भाव करनेवाली, हास्य क्रीड़ा करनेवाली स्त्री के अङ्गोपाङ्गादि के दर्शन की उत्सुकता से मेरे मन और आत्मा को क्यों जाल में फँसाना चाहती है। मैं अब तेरे जाल में फँसनेवाला नहीं हूँ। क्योंकि अब मेरा मन रूपी भ्रमर प्रभु के चरणरूपी कमलों में गुञ्जार कर रहा है ॥११६-१२०॥

सज्ज्ञानमूलशाली दर्शनशाखश्च येन वृत्ततरुः।
श्रद्धाजलेन सिक्तोमुक्तिफलं तस्य ददातीह ॥१२१॥

रज्यद्बिम्बाधरश्रीपिशितसवलितं रोमराजीवसूत्रम्,
भ्रूवल्लिक्षेपकालायसवडिशमिदं तत्कटाक्षोपकर्णिम् ।
अस्यां संसारनद्यां विसरतिकुतुकी निर्दयोऽयं कृतान्त-
स्तद्ग्रासोल्लासधाशं परिहरत परं भ्रातरोलोकमीनाः ॥
नाहं कस्यापि कश्चिन्न च मम ममता नाशमूलं किलैत-
न्नित्यं चित्ते ध्रियध्वं यदि जगदखिलं नाममिथ्येति बुद्धिः!
एतस्याहं समैतद्यदि मनसि तदा जन्मकर्माद्रियध्वम्,
मन्यध्वं गर्भचर्मा वृत्तिमभयपदं किन्तु पुण्यं कुरुध्वम् ॥

भावार्थ—इस संसार रूपी नदी में, यह मृत्यु रूपी निर्दयी धीवर, स्त्री के मांस संयुक्त रक्तवर्ण वाले अधर स्वरूपी फल को, भृकुटियों के कटाक्ष रूपी काँटों से संयुक्त, रोमावली रूपी भयंकर कन्टकाकीर्ण जाल में डाल कर इस प्राणी रूपी मछली को प्रलो-भन में डालता है। और जब यह प्राणी रूपी मछली उस जाल में फँस जाती है। तब मृत्यु रूपी धीवर उसे पकड़ कर काल का ग्रास बना लेता है ॥११७॥ इस संसार में न तो मैं ही किसी का हो सका हूँ, और न मेरा ही कोई हो सका है। यह चित्त में धारण की हुई मोह और ममता ही मेरा और तेरा भाव उत्पन्न कराती है। इस भयङ्कर जन्म-मरण के दुःख को देनेवाले एवं संसार में जीव को भ्रमण करानेवाले मोह को छोड़ कर जन्म और मरण के भय से रहित कर्म का विनाश करके आनन्द-पूर्ण चिन्मय मुक्ति की प्राप्ति का उपाय करना ही श्रेयस्कर है ॥११८॥

पितृभ्रातृसपिण्डबान्धवगणप्रौढप्रभावाग्रणीः-
श्रावद्द्रुतमिष्टयोगनिपुणः प्रायात्पुरे व्यावरे।
श्रीसिद्धार्थनरेशवंशसरसीजन्माब्जिनीवल्लभ-
ध्यानेनानयत्स्वकीयसमयं मुक्तिश्रियं वेदिनम् ॥११६॥
किं लोलाक्षिकटाक्षलम्पटतया किं स्तम्भजृम्भादिभिः-
किं प्रत्यङ्गनिदर्शनोत्सुकतया किं प्रोलसच्चाटुभिः।
आत्मानं प्रतिबाधसे त्वमधुना व्यर्थं मदर्थं यतः-
शुद्धध्यानमहारसायनरसे लीनं मदीयं मनः ॥१२०॥

भावार्थ—हमारे चरित्रनायक प्रौढ प्रभावशाली श्री खूबचन्द्र-जी, अपने पिता, भाई आदि सम्बन्धी-जनों के करुणा-जनक वाक्यों को सुन कर भी अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। और वे वहाँ से शीघ्र ही व्यावर चले गये। वहाँ पर वे वीर प्रभु के ध्यान में अपने समय को व्यतीत करने लगे। यों, श्री महावीर प्रभु के ध्यान में निमग्न होकर वे अब तृष्णा के प्रति कहने लगे, कि हे तृष्णे! तू चपल नेत्र-कटाक्ष वाली हाव-भाव करनेवाली, हास्य क्रीड़ा करनेवाली स्त्री के अङ्गोपाङ्गादि के दर्शन की उत्सुकता से मेरे मन और आत्मा को क्यों जाल में फँसाना चाहती है। मैं अब तेरे जाल में फँसनेवाला नहीं हूँ। क्योंकि अब मेरा मन रूपी भ्रमर प्रभु के चरणरूपी कमलों में गुञ्जार कर रहा है ॥११६-१२०॥

सज्ज्ञानमूलशाली दर्शनशाखश्च येन वृत्ततरुः।
श्रद्धाजलेन सिक्तोमुक्तिफलं तस्य ददातीह ॥१२१॥

भावार्थ—सद्ज्ञान रूपी जड़ से संयुक्त, सद्बुद्धि रूपी शाखा वाले, सच्चरित्र रूपी कल्प-वृक्ष को, जो पुरुष श्रद्धा रूपी जल से सिंचित करते हैं। वे पुरुष उस कल्प-वृक्ष द्वारा मुक्ति रूपी फल को अवश्य ही प्राप्त करते हैं ॥१२१॥

यद्गार्हस्थ्यकुलोचितं सुवसनं हित्वा स्थितिं स्थानके,
कृत्वार्हत्पदचिन्तनं मुनिजनं ध्यात्वा विदित्वागमम् ।
न ज्ञानामृतमन्थनेन हृदयाम्भोधिर्दृढोमथ्यते,
यावत्तावदीयं न मुक्तिरमणी केनाप्यहो लभ्यते ॥१२२॥
स्वाध्यायोत्तमगीतिसङ्गतिजुषः सन्तोषपुष्पान्विताः-
सम्यग्ज्ञानविलासमण्डपगताः सद्ध्यानशय्याश्रिताः ।
तत्वार्थप्रतिबोधदीपकलिकाः क्षान्त्यङ्गनासङ्गिनो,
निर्वाणैकसुखाभिलाषिमनसो धन्या नयन्ते निशाम् ॥
ये जल्पन्ति व्यसनविमुखां भारतीमस्तदोषाम्,
ये श्रीनीतिद्युतिमतिधृतिप्रीतिशान्तीर्दधन्ते ।
येभ्यः कीर्तिर्विगलितमला जायते जन्मभाजाम्
शश्वत्सन्तः कलिलहतये ते नरेणात्र सेव्याः ॥१२४॥

भावार्थ—अब श्री खूबचन्द्रजी, अपने गार्हस्थ्य-जीवन-सम्बन्धी वस्त्रों को परित्याग करके साधु-वस्त्र धारण कर पौषध-शाला में रहने लगे। वहाँ प्रतिदिन वे जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलों में भक्ति-पूर्वक ध्यान लगाए रहते। और निर्ग्रन्थ-मुनि जनों की वन्दना तथा सेवा-सुश्रूषा करते हुए निरन्तर इस बात का

चितन करते रहते, कि जब तक में ज्ञान रूपी रई ( विलौवनी ) द्वारा हृदय रूपी समुद्र का मन्थन भली प्रकार से नहीं कर लूँगा.तब तक मुझ को मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकेगी ॥१२२॥ और जो पुरुष स्वाध्याय रूपी उत्तम गान से प्रमुदित हैं, सन्तोष रूपी पुष्पों से पूजित हैं, सम्यक् ज्ञान रूपी मण्डप में विलास करनेवाले हैं। सद्ध्यान रूपी शय्या पर स्थित होकर तत्वज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश द्वारा शांति रूपी सुन्दर-पथ पर चलने वाले हैं। तथा निर्वाण रूपी अनुपम सुख की अभिलाषा में ही लीन हो कर, अपनी रात्रियों को आनन्द से व्यतीत करते हैं। वे पुरुष वास्तव में साधु पुरुष हैं। और अनेकानेक धन्यवाद के पात्र हैं। अतः हे जीव! अब तुझे भी ऐसे ही सन्त पुरुषों की सेवा में लीन हो जाना चाहिए, कि जो कष्ट-नाशक पवित्र जिनोक्त वाणी का सेवन करते हैं। तथा जो अचल नीति, सम्पत्ति, कान्ति, मति, प्रीति, धैर्य एवं शक्ति के प्रदाता हैं। तथा जिनके प्रताप से प्राणियों की कीर्ति विमल होती है। और जो पाप के नाशक हैं ॥१२३-१२४॥

सत्यांवाचं वदति कुरुते नात्मशंसान्यनिन्दे,
नो मात्सर्यं श्रयति तनुते तापकारं परेषाम्।
नो शप्तोऽपि व्रजति विकृतिं नैति मन्युं कदाचित्,
केनाप्येतन्निगदितमहो चेष्टितं योगभाजः ॥१२५॥

भावार्थ—योगनिष्ट पुरुषों का मुख्य ध्येय एवं लक्ष्य यही होता है, कि वे प्रतिदिन सत्य-भाषण करते हैं। अपनी प्रशंसा

तथा अन्य पुरुषों की निंदा से विमुख रहते हैं। दूसरों को कष्ट पहुँचानेवाले कार्यों से सदैव विलग रहते हैं। वे निराभिमानता और शांति-पथ के अनुगामी होते हैं। तथा क्रोधादि कषायों से उनकी आत्मा विमुक्त रहती है ॥१२५॥

प्रालेखीत्पत्रमेकं पितृपदकमले खूबचन्द्रोविरागी,
शुभ्राज्ञां दीक्षितुं तं सदृढनियमनान्मोक्षमाकाङ्क्षमाणम्।
भक्तुं लावण्यपूर्णं चलदृढनिमिषं राजहंसोपजीव्यम्,
भ्राम्यद्भ्रूयुग्मभङ्गं त्रिदशमुनिगणासेवनीयं प्रसन्नम् ॥११६॥
एष्यत्त्वं तात गेहे यदि शुभ-मनसा निम्बाहाडानगर्याम्,
तर्हि प्राप्स्यच्छुभाज्ञां जगदुपकृतये तातमात्रादिकानाम्।
लब्ध्वैतत्सङ्गपत्रं परिचितपरम ज्योतिरानन्दसान्द्रः,
सः प्रायान्निम्बहाडां सुरुचिरनगरीं स्थानकेऽधत्तवासम् ॥

भावार्थ—तदनंतर वैराग्यशील श्री खूबचन्द्र जी ने, व्यावर से एक पत्र अपने पूज्य पिता श्री टेकचन्द्र जी के नाम लिखा। जिसमें उन्होंने दीक्षा की आज्ञा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की थी। इस पत्र के प्राप्त होते ही श्री टेकचंद्र जी ने, मुक्ति के निश्चित अभिलाषी, मनोज्ञ, ध्यान-प्राप्त, देव और मुनिगण द्वारा वाञ्छनीय दिव्य ज्योति की प्राप्ति के इच्छुक अपने सुपुत्र श्री खूबचंद जी को पत्रोत्तर दिया, कि "यदि तुम निम्बाहेड़ा में आ कर दीक्षा के लिए आज्ञा प्राप्त करोगे, तो मैं तथा तुम्हारी माता और भाई आदि सभी कुटुम्बी जन मिल कर तुम्हें दीक्षा के लिए आज्ञा प्रदान कर

देंगे। अन्यथा नहीं।" इस प्रत्युत्तर को प्राप्त करके दिव्य ज्योति की प्राप्ति के लिए लालायित होने वाले तथा मुनि-पद के परमानुरागी श्री खूबचंद्रजी ने अत्यन्त प्रफुल्लित हृदय से अपनी जन्म-भूमि निम्बाहेड़ा नामक नगर की ओर दीक्षा की आज्ञा-प्राप्ति के अर्थ प्रस्थान कर दिया। और वहाँ पहुँच कर उन्होंने स्थानक में ही निवास किया ॥१२६-१२७॥

पुत्रस्नेहसुधाब्धिवीचिलसिता साचेत्तणात्प्रसूः,
प्रायात्स्थानकमङ्गजं वदति सा प्रयाहि गेहं सुत ! ।
अद्धित्वं घृतसंयुतं विधविधं स्वादिष्टमन्नादिकम्,
कीर्तिश्रीव्यवहारसाधनतया गार्हस्थ्यधर्मं भज ॥१२८॥
मातःस्थानकवासिनः किमशनं गार्हस्थ्यगेहाङ्गणे,
आगच्छामि भवद्गृहे ग्रहयितुं भिक्षान्नमुष्णोदकम् ।
यावद्दुष्टरसक्षयाय नितरां नाहारलौल्यं जितम्,
सिद्धान्तार्थमहौपधे निरुपमश्चूर्णो न जीर्णो हृदि॥१२६॥
मिथ्यात्वानुचरैर्विचित्रगतिभिः संचारितस्योद्भटै-
रत्युग्रभ्रमसुद्गराहति वशात्संमूर्च्छितस्यानिशम् ।
संसारेऽत्र नियन्त्रितस्य निगडैर्मायामयैश्चोरवत्,
मुक्तिः स्यान्मम सत्वरं कथमतः सद्वृत्तवित्तं विना ॥
दुःप्रापं मकराकरे करतलाद्रत्नं निमग्नं यथा,
संसारेऽत्र तथा नरत्व मथतत्प्राप्तं मया निर्मलम् ।

मातः पश्य विमूढतां मम हहा नष्टं मया चेन्मुधा,
कामक्रोधकुबोधमत्सरकुधी माया महामोहतः ॥१२१॥

भावार्थ—जब उनकी माता ने उनके शुभागमन का सम्वाद सुना, तो वह पुत्र-प्रेम में विभोर होकर तत्क्षण दौड़ी-दौड़ी उपाश्रय में उपस्थित हुई। और अपने पुत्र श्री खूबचन्द्र जी से कहने लगी कि हे पुत्र! घर को चल। और वहाँ नाना प्रकार के घृतपूर्ण स्वादिष्ट मिष्टान्नादि का भोग करके कीर्ति पूर्वक लक्ष्मी का अर्जन करते हुए गार्हस्थ्य-धर्म का पालन कर। तब हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी ने अपनी माता से विनय पूर्वक निवेदन किया, कि हे माता! स्थानक (उपाश्रय) में निवास करनेवाले व्यक्तियों के लिए गृहस्थ के घर भोजन करना किस प्रकार उचित हो सकता है? अब तो मैं वैराग्य-वृत्ति में रहने के कारण साधु हूँ। अतः अब आपके घर तो मैं केवल साधुओंके अनुकूल भिक्षान्न और गर्म जल आदि को लेने के लिए ही आ सकता हूँ। यदि साधु-वृत्ति को अंगीकार करके फिर भी पुरुष ने खाने-पीने की लोलुपता को नहीं छोड़ा और सिद्धान्त रूपी औषधि से अपने हृदय को शुद्ध विशुद्ध नहीं किया तो उसका जन्म ही व्यर्थ है। अनादि अनंत संसार में, मिथ्यात्व की संगति के कारण, यह प्राणी, उन्माद रूपी भयंकर आँधी के द्वारा गिरता-पड़ता हुआ, अत्युग्र भ्रम रूपी मुद्गर की असह्य चोटों से मूर्छित हो रहा है। अतः माया रूपी लोहे की मजबूत शृङ्खलाओं से बद्ध,

आदर्श-चरित्र

स्तु ति त

ता

वि

श्रि या रे स्य म ता ते

[illegible]

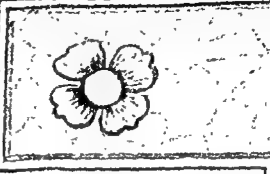
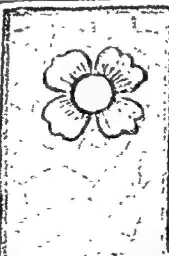
भावार्थ—जिनकी वाणी [illegible] ता [illegible]

[illegible] । ऐसे आदर्श [illegible]

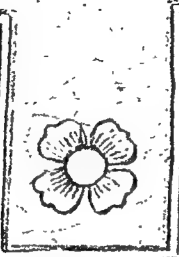
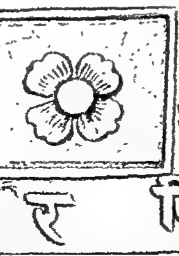
[illegible] करता हूँ।

व र स्य

ता

त्तु स्मृ ति त
त  त्त
वि 

त्रि या र स्मा म त्ता त्त

 र  कृ
त्ता
ब र स्थि त

यह प्राणी, सद्-चरित्र ग्रहण किए बिना, किसी भी प्रकार से, मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है। हे माता! इस संसाररूपी समुद्र में सौभाग्यवश मुझे यह मनुष्य-पर्याय रूप अनुपम रत्न प्राप्त हो गया है। और यदि अब मैं इस अनमोल रत्न को, काम, क्रोध, अज्ञान, मत्सर, माया और मोह आदि के वश होकर भस्मीभूत कर डालूँ, तो हे माताजी! बतलाइए, कि फिर मुझ-सा मूर्ख इस संसार में और कौन हो सकता है? ॥१२८-१२६ १३०-१३१।

को देवो? वीततमाः कः सुगुरुः? शुद्धमार्गसंभाषी।
किं परमं विज्ञानं स्वकीयगुणदोषविज्ञानम् ॥१३२॥

भावार्थ—इस संसार में ऐसा देव कौन है? जो कि क्रोधादि दोषों से रहित हो। सद्गुरु कौन हैं? जो परम विशुद्ध मुक्ति-मार्ग को बतलाते हों। और परम विज्ञान क्या वस्तु है? जिस वस्तु के द्वारा अपने गुण और दोष का ज्ञान हो जाता है। उसी को परम विज्ञान कहते हैं ॥१३२॥

आत्मा यद्विनियोजितो न विनये नोग्रं तपः प्रापितो-
न क्षान्त्या समलङ्कृतः प्रतिकलं सत्येन न प्रीणितः।
तत्वं निन्दसि नैव कर्महतकं प्राप्ते कृतान्तक्षणे,
दैवायैव ददासि जीवनितरां शापं विमूढोऽसिरे ॥१३३॥

निम्बाहाडापुरवासिनश्च सकला हिन्दुतुरुष्कादयो-
वैराग्यं सुदृढं समीक्ष्य सहसाऽऽयाक्षुः समारोहणे।

प्राच्योतीच्च मुनीश्वरः स्वजननीं तातं वधू सोदरान्,
एवं तत्पुरवासिनोजिनविभोवाक्यामृतैः श्रद्धया ॥१३४॥
श्रावक् तात ! पवित्रपादकमलं नत्वा पवित्राशयः,
संसारोऽयमवन्ममाति भयदः भातीपितः ! साम्प्रतम् ।
तत्वं तारय संसृतेः सुजनकः सत्सौख्यदः सन्ततेः,
चारित्रग्रहणे ममास्तु भवतां वंशस्य चास्तूदयः ॥१३५॥

भावार्थ--हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंद्र जी अपनी आत्मा के प्रति कहने लगे, कि हे आत्मन् ! तू स्वयं ही विनयशीलता, उग्रतम तपस्या तथा सर्वोत्तम क्षमा के गुणों से अलंकृत नहीं है। और तूने स्वयं अपने को प्रति क्षण सत्यता की कसौटी पर कस, संतोष प्राप्त नहीं किया है। अपने सिर पर मृत्यु के मँडराते रहने पर भी तू ने अपने नीच कर्मों की निन्दा नहीं की। और अब भी तू निष्क्रिय बन कर अपने भाग्य को ही दोषी ठहरा रहा है। अतः बता, कि अब तेरे समान और कौन मूर्ख हो सकता है ? ॥१३३॥ इस प्रकार श्री खूबचंद्र जी को वैराग्य में सुदृढ देख कर वहाँ पर एक बहुसंख्यक हिंदू-मुस्लिम जनता का समुदाय एकत्रित हो गया। उन सब लोगों के देखते ही देखते हमारे चरित्रनायक, भावी मुनीश्वर श्री खूबचंद्र जी ने जिनदेव के वाक्यामृत द्वारा संतुष्ट तथा श्रद्धान्वित होकर अपने, माता, पिता, स्त्री और भाई आदि समस्त कुटुम्ब का परित्याग कर दिया ॥१३४॥ इस प्रकार मोह-माया से परित्यक्त होकर आपने अपन हृदय के पवित्र भावों से

प्रेरित हो पिता जी से कहा, कि पिता जी ! जन्म-मरण और जरा आदि के दुःखों से व्याप्त, यह सारा संसार मुझे अत्यन्त भयानक प्रतीत हो रहा है। अतएव आप मुझ को इस अथाह संसार-सागर से पार लगा दीजिए। क्योंकि पिता अपनी संतान के लिए सदैव सुख के साधन एकत्रित कर देते हैं। मेरे दीक्षा ग्रहण करने से आपके वंश की कीर्ति होगी।

मातृभ्रातृकुटुम्बवर्गभगिनी तातस्वकीयाङ्गना,
दीक्षाज्ञां परिलभ्य योगिनपुणोऽद्राशिष्टवासादिकान्।
पश्चान्नीमचमागमद्यतिवरं श्रीनन्दलालाभिधम्,
दीक्षामर्जयितुं मुनिं सुमनसा नत्वा तथा प्रार्थयत् ॥१३६॥

भावार्थ—अब योग-निष्ट श्री खूबचंद्रजी ने अपने भाई, माता, बहिन आदि कुटुम्बी वर्ग की आज्ञा प्राप्त कर के वहाँ से प्रस्थान किया। और नीमच पहुँच कर सर्व प्रथम वहाँ विराजित मुनिवर श्री नंदलालजी महाराज के चरण-कमल में वन्दना करके दीक्षा-प्रदान करने के लिए प्रार्थना की ॥१३६॥

* * *

# तृतीय परिच्छेद

-*:○:*-

## दीक्षा-महोत्सव और प्रारम्भिक चातुर्मास

—:*:*:—

वैराग्योचितवस्त्रभूषितवपुः सङ्घं समावीवचत्,
साधोर्वस्त्रसमर्चितस्य न पुनः दीक्षाश्वरोहं क्वचित् ।
नानागीतसुवाद्यमङ्गलरवैस्तत्स्थानकं चर्चितम्,
तैर्दत्तानुमतिर्व्रतं स समलात्पौरः कृताभ्युत्सवम् ॥१३७॥
धृत्वा पञ्चमहाव्रतानि समितिप्रोद्दामगुप्त्याङ्किता-
न्येपप्रोद्द्रुतमेरुमानवमहीसाम्यं क्षमातोऽभजत् ।
साधूनां विविधैर्गुणैर्धुरितपः कृत्येऽभवद्धैर्यवत्,
शास्त्रस्याध्ययने च देवगुरुवत् दभ्राग्रबुद्धिर्मुनिः ॥१३८॥

भावार्थ—नीमच के श्री संघ ने दीक्षा-भावी श्री खूबचंद्र जी का दीक्षा-महोत्सव बड़े समारोह पूर्वक मनाने का निश्चय किया। महोत्सव के संचालकों ने जब दीक्षार्थी श्री खूबचंद्र जी से अश्वारोहण के लिए साग्रह प्रार्थना की। तब वैराग्योचित वस्त्रों से सुसज्जित चरित्रनायक जी ने श्री संघ से दृढ़ता पूर्वक कहा, "मैंने पहले से

ही स्वयं साधु-वेष पहन लिया है. अतएव अब मुझे अश्वारोहण की कोई आवश्यकता नहीं है।" दत्तार्थी जी के इस वक्तव्य को सुन कर श्री संघ ने अनेक प्रकार के सुन्दर वाद्य और सुमधुर गीतों के द्वारा इस मङ्गलमय महोत्सव को सानंद सम्पादित किया ॥१३७॥ अब हमारे चरित्रनायकजी निर्ग्रंथ दीक्षा से दीक्षित हुए। अर्थात् अब उन्होंने पाँच महाव्रत, पाँच-समिति और तीन गुप्तियों को धारण करते हुए मुनि-पद को स्वीकार किया। और अपने पूज्य गुरुदेव की सेवा में रह कर नित्यप्रति विनय-भक्ति पूर्वक पठन-पाठन में दत्तचित्त हुए। थोड़े ही दिनों में वे मुनि-पदोचित विविध गुणों से विभूषित हुए। तीव्र-तप-विधान के द्वारा अपनी आत्मा को विशुद्ध किया और अपने कुशाग्र बुद्धि बल, द्वारा, शास्त्राध्ययन किया ॥१३८॥

वर्षे पक्षाजुनन्दभ्रु वपरिमितसद्विक्रमीये तृतीया,
तिथ्यामाषाढमासे शशधरदिवसे कृष्णपक्षे तथा च।
प्राज्यप्रौढप्रसादप्रतिभरनिधनप्राप्तदीक्षाप्रतापः,
प्रोच्चैः प्रीतिं प्रयाति प्रतिकलममलां प्राणिनां प्रेक्षमाणः

भावार्थ—इस प्रकार विक्रम संवत् १९५२ के आषाढ़ शुक्ला ३ सोमवार को हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंद्रजी ने दीक्षा ग्रहण की। और काम-क्रोधादि कषायों पर विजय प्राप्त करके अपनी आत्मा का सर्वोच्च कल्याण करने के लिए समुद्यत हुए ॥१३९॥

कक्ष्यां चौलपटं तनौ सितपटं कृत्वा शिरोलुञ्चनम्,
हस्ते पात्रमथोरजोहरणकं निक्षिप्य कक्षान्तरे।

बद्ध्वा सम्मुखवस्त्रिकां शुचितरामाकाशगङ्गासमाम्
वैराग्याम्बुजिनीप्रबोधनपटुः प्रध्वस्तदोषाकरः ॥१४०॥
प्रारम्भिष्टसुवेदितुं च विविधां वैकालक्षत्रादिकम,
ठाणाङ्गं समवांगमिष्टफलदं प्राधीत्य तत्रान्तरे ।
सर्वार्हन्मतशास्त्रपारमगमच्छ्रीखूबचन्द्रो मुनिः,
जातोऽन्यागमदर्शनोत्सुकमना मुक्तिश्रियं वेदितम् ॥
चातुर्मासमनेष्ठशुद्धचरितः श्रीनन्दलालं गुरुम्,
सद्भक्त्या परिसेव्य प्रोदयपुरे मेवाडदेशान्तरे ।
जैनस्थानकवासिशास्त्रनिपुणः सम्यग्दशा सद्गुणी,
लीलाभङ्गमहारिभिन्नमदनं तापाय हृद्या परम् ॥१४२॥

भावार्थ--उन्होंने अपने शरीर पर शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण किये। मुँह पर मुख-वस्त्रिका बाँधी। कटि पर चोलपट्टा, हाथ में पात्र और बगल में रजोहरण ग्रहण किया। अब वे अपने मुँह पर बँधी हुई आकाश-गङ्गा की शोभा को धारण करनेवाली स्वच्छ श्वेत मुख-वस्त्रिका तथा केश-लुञ्चित मस्तक द्वारा, ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो वैराग्य रूपी सरोवर के कमल को प्रफुल्लित करने वाले एक दैदीप्यमान् सूर्य हैं। उन्होंने क्रमशः दशवैकालिक आदि जैन तत्त्व-प्रदर्शक शास्त्रों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन एवं मनन किया। यों काम-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए अपने पूज्य गुरुदेव की सेवा में रह कर उन्होंने अपना प्रारम्भिक चातुर्मास उदयपुर में व्यतीत किया ॥१४०-१४१-१४२॥

तत्पश्चान्मुनिसत्तमः समगमच्छ्रीखाचरोद्स्थले,
देवीलालयतीश्वरेण सहसा व्याख्याद्वितीयाह्निके।
मेवाडे पृथुसादडीं स्वगुरुणा सार्द्धं समायात्तदा,
व्याख्यानामृतसिञ्चाद्र मनसा श्रोतॄन् समासीपधत् ॥१४३॥
तुर्येब्दे समशिश्रियद्गुरुवरं सत्स्थानके नीमचे
नीत्वा माणिकचन्द्रयोगनिपुणं श्रीमन्दसौरेऽगमत्।
एवं पर्यटनेऽन्वयिष्टमुदतः श्रीजावरास्थाके,
विख्यातार्हद्भक्तिभावितः सच्छ्रे णिकत्वमापवत् ॥१४४॥

भावार्थ—आपने अपना द्वितीय चातुर्मास संवत् १९५३ में सुप्रसिद्ध भजनानंदी मुनि श्री देवीलालजी महाराज के साथ खाचरोद में किया। और फिर तीसरा चातुर्मास संवत १९५४ में आपने अपने गुरुजी के साथ रह कर वड़ी सादड़ी में किया। वहाँ की जनता आपके व्याख्यानों से वड़ी ही प्रभावित हुई ॥१४३॥ चौथा चातुर्मास भी संवत् १९५५ में आपने अपने गुरुजीके ही चरण कमल में रह कर नीमच शहर में व्यतीत किया। तत्पश्चात संवत १९५६ में पाँचवाँ चातुर्मास तपस्वी मुनि श्री माणिकचन्दजी म० के साथ मन्दसौर में किया। आपके आत्म-ज्ञान-गर्भित उपदेशों से मन्दसौर की जनता का ध्यान, आत्म-कल्याण की ओर आकर्षित हुआ। इस प्रकार जनता को सन्मार्ग की ओर लगाते हुए आपका शुभागमन जावरा नगर में हुआ ॥१४४॥

आसीन्नीमचसन्निकृष्टधरणौ ग्रामे शुभे जीरणे,
श्रीमद्गौतमलालनामसुधियोभार्यामृतावाभिधा ।
तत्कुक्षीपुटतोऽभवच्छुचिमणिः श्रीसौख्यलालः शिशुः,
रीयातां पितरौ तदल्पवयसि स्वर्ग विहायात्मजम् ॥१४५॥

जीरण में एक दीक्षार्थी की दीक्षा

भावार्थ—नीमच के समीपस्थ जीरण नामक एक शुभ ग्राम में श्रीमान् गौतमलाल नामक एक ओसवाल महानुभाव निवास करते थे। उनकी स्त्री अमृतदेवी की कुक्षि से एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। जिसका नाम सुखलाल रक्खा गया। मगर दुर्भाग्यवश इस बालक को इसके माता-पिता बाल्यावस्था में ही छोड़कर परलोक को सिधार गये ॥१४५॥

सन्यग्धर्मेव्यवसितपरः पुण्यकर्मैकशाली,
पन्नालालोऽमृतमयवपुश्चन्द्रवच्छान्तिदाता ।
शोभालालप्रमुदितसुतः कासवाख्ये सुगोत्रे,
सद्वृत्ताढ्योमुनिरिवजनोऽशिश्रयत्सौख्यलालम् ॥१४६॥

भावार्थ—धर्म परायण, पुण्य-कार्य में लीन, चन्द्र के समान शांति के प्रदान करनेवाले, कांसवाँ गोत्रोत्पन्न श्रीमान् सुवालालजी के भ्राता, साधु-हृदयी श्रीमान् पन्नालाल जी ने इस बाल-रत्न सुखलाल का लालन-पालन किया ॥१४६॥

मुक्त्वा स्वार्थं सकृपहृदयो यः परार्थं करोति,
यो निर्व्याजां विजितकलुषां धर्मबुद्धिं तनोति ।

यो निर्गर्वो विधियति हितं गर्हते नापवादम्,
सत्पुन्नागः सततसुखदः पुण्यवान् भाति लोके ॥१४७॥

भावार्थ—जो मनुष्य श्रीमान् पन्नालाल जी के समान कृश एवं करुणा पूर्ण हृदय से पर-हित-व्रत को धारण करते हैं। तथा जो छल-कपट, अभिमान, और पर-निंदा आदि पापों से रहित होकर धर्म - बुद्धि को ग्रहण करते हैं। वे पुण्यवान् प्राणी वास्तव में पुरुष-शिरोमणि होकर लोक में शोभा के पात्र बनते हैं ॥१४७॥

हीरालालकविः कलासु निपुणोव्याख्यानदक्षःसुधीः,
शश्वद्योगपथानुगाः सहृदयाः श्रीखूबचन्द्रादयः।
श्रुत्वा श्रीमुनिखूबचन्द्रशुभदं व्याख्यानमाजिज्ञपत्,
मिथ्येदं सुखलाल उच्चमतिभूः संसारमायाजलम् ॥१४८

भावार्थ—सौभाग्य से एक बार इसी जीरण नामक ग्राम में कविवर मुनि श्री हीरालालजी म० एवं हमारे चरित्रनायक, योग-निष्ठ, धैर्यवान मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० आदि मुनियों का शुभागमन हुआ। चरित्रनायक मुनि श्री जी के ओजस्वी व्याख्यान को सुन कर के बालक सुखलालजी को वैराग्य उत्पन्न हो गया। और उन्हें यह संसार मिथ्या भाषित होने लगा ॥१४८॥

इमां प्रवृत्तिं सुखलालबालपितृस्वसाऽरुद्धनिजात्मजेन।
श्रीकासवागोत्रजधर्मचेता भवानिरामोऽज्ञपयत्ततस्ताम् १४९॥

भावार्थ—बालक-रत्न श्री सुखलालजी को इस वैराग्य वृत्ति में, उनकी भुआ ने अपने पुत्र द्वारा रोड़ा अटकाया। तथा इसी

प्रकार कासवाँ गोत्रोत्पन्न धर्म-प्रेमी श्रीमान् भावानीराम जी भी वैराग्य-भावी श्री सुखलालजी को समझाने लगे। किन्तु बालक-रत्न श्री सुखलालजी की वैराग्य भावना पूर्ण रूपेण सुदृढ़ थी। अतः उन्होंने किसी की भी बात न मानते हुए दीक्षा-ग्रहण करने का ध्रुव निश्चय कर लिया ॥१४६॥

तत्राद्रीन्द्रियभक्तिभूपरिमिते वैसाखमासे रवौ,
कृष्णायां प्रतिपत्तिथौ शुचिमनाऽदीक्षिष्ट शिष्यं नवम्
प्राप्तैकादशवार्षिकं सुचरितं ज्ञानामृतैः सीक्तिम्,
नामानं सुखलालमोडितमतिं सङ्काज्ञया प्रार्चितम् ॥१५०॥

भावार्थ—तत्पश्चात धैर्यवान् पं० मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० ने इन ग्यारह वर्षीय वैराग्यार्थी सुखलालजी को जो कि दीक्षा-ग्रहण करने के लिए लालायित थे। विक्रम संवत १९५७ के वैशाख कृष्णा १ रविवार को दीक्षित किये ॥१५०॥

अध्यायिसुखलालेन, श्रीपञ्चपरमेष्टिनाम्।
नमस्कारपरं तत्र सर्वकर्मसुकर्मठः ॥१५१॥
अध्यैष्ट षट्विंशजिनेन्द्रपूतसूत्राणि हिन्दीगिरमुत्सवेन।
उर्दू क्तिरम्यञ्चवचोविलासं गुरुप्रसादात्सुखलालयोगी ॥

भावार्थ—अत्र नवदीक्षित मुनि श्री सुखलालजी महाराज ने पंच परमेष्ठी तथा अपने गुरुदेव की सेवा भक्ति पूर्वक ज्ञानाभ्यास किया। और स्वल्प समय में ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा हिन्दी,

उर्दू आदि भाषाओं का तथा जैन सूत्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया ॥१५१-१५२॥

गुरुप्रसादोदकसिक्तबुद्धिलताकवित्वं फलमाससिष्ठ ।
यदीयसत्काव्यसुधाप्रवाहो देव्यागिरांलातिकला विलासम्

भावार्थ—गुरु की प्रसन्नता रूपी जल-धारा से सिञ्चित मुनि श्री सुखलाल जी महाराज की बुद्धि रूपी लता से कविता रूपी फल उत्पन्न हुआ। उस कवितारूपी फल की अमृतधारा का प्रवाह फिर ऐसा प्रवाहित होने लगा, कि जो सरस्वती की वाणी के विलास को ग्रहण कर रहा है ॥१५३॥

सुखयमनिधिभूमिवत्सरे जीरणाख्ये,
समनयतसुभावैः शुभ्रचातुः समासम् ।
अनुपमगुणराशिः शीलचारित्रभूपः-
प्रगदति जिनवाण्या सर्वकल्याणमूलम् ॥१५४॥
हरति जननदुःखं मुक्तिसौख्यं विधत्ते,
रचयति शुभबुद्धिं पापबुद्धिं धुनीते ।
अवति सकलजन्तून् कर्मशत्रून्निहन्ति,
प्रशमयति च नो यो जैनधर्मं दधाति ॥१५५॥

भावार्थ—संवत् १९५८ का चातुर्मास हमारे चरित्रनायक धैर्यवान् पं०मुनि श्री खूबचंद्रजी म० ने जीरण में किया। इस चातु-र्मास में वहाँ पर आपके प्रति दिन व्याख्यान हुए। जिनके प्रभाव

से जैन धर्म, जो कि जन्म-मरण के दुःखों का अन्त करने वाला और मुक्ति के अक्षय सुखों का प्रदाता है। और जो सद् बुद्धि प्रदायक पाप-बुद्धि प्रभंजक, सकल प्राणियों का रक्षक और कर्म शत्रुओं का विध्वंसक है। ऐसे परम पवित्र जैन धर्म का खूब ही प्रबल प्रचार हुआ। और जनता के हृदयों में अनेकानेक शुभ भावनाओं की जागृति हुई ॥१५४-१५५॥

ग्रहशिवमुखनन्दक्ष्मापुरीमुज्जयन्तीम्,
समगमदुपदेशैः कर्मनिर्मूलनाय।
वदति वचनमुच्चैर्दुःश्रवं कर्कशादि-
कलुषविदलतायां तां क्षमां श्लाघते सः ॥१५६॥

भावार्थ—आपने संवत् १६५६ का चातुर्मास उज्जैन में किया। वहाँ पर आपने जगत्-जनता के कर्मों को निर्मूल करने के लिए प्रतिदिन धारावाही सदुपदेश प्रदान किया। क्षमा की व्याख्या और प्रशंसा करते हुए आपने घोषित किया, कि दुःखदायी कठोर वचनों को सहन करना ही क्षमा है। क्षमा बड़ा ही परम पवित्र और प्रशंसनीय गुण है ॥१५६॥

प्लीहागता पञ्चदिनोपवासैरत्रैव मूलान्न पुनश्च जाता।
तपोहि शस्त्रं कृतपूर्वकर्मसामर्थ्यछेदे भवतीति भूमौ ॥

भावार्थ—इस चातुर्मास में आपने पाँच दिन का अनशन व्रत किया। जिसके प्रभाव से आपकी तिल्ली समूल नष्ट हो गई।

और फिर उत्पन्न होने का उसका साहस ही नहीं हुआ। तब आपने जनता को उपदेश दिया, कि इस संसार में पूर्व कृत कर्मों के छेदन-भेदन का एक मात्र अमोघ शस्त्र तप ही है ॥१५७॥

गगनरसनिधिज्यानग्गढे माण्डलाख्ये,
प्रचुरमनुजसंख्याऽपिप्रियतपञ्चरङ्गीम्।
अमृतमथनसिक्ता धर्मभावप्रसक्ता,
शपथमवृणुतामी प्रावितुं जीवहिंसाम् ॥१५८॥

भावार्थ—आपने विक्रम संवत् १९६० का चातुर्मास माँडलगढ़ तलहटी में समाप्त किया। वहाँ पर स्वधर्मियों के केवल ६० घर होते हुए भी तपस्या की चार. पंचरंगियाँ हुईं। तथा आपके प्रभावशाली उपदेशों से प्रभावित होकर बहुसंख्यक जैनेतर जनता ने मांस-भक्षण का परित्याग किया और जीवन पर्यंत जीव-हिंसा न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा धारण की ॥१५८॥

किमिह परमसौख्यं निस्पृहत्वं यदेतत्,
किमथ परमदुःखं सस्पृहत्वं यदेतत्।
इति मनसि विधाय त्यक्तसङ्गाः सदा ये
विदधति जिनधर्मं ते नराः पुण्यवन्तः ॥१५९॥

भावार्थ—वहाँ पर आपने नाना प्रकार के सदुपदेशों द्वारा जनता को यह बताया, कि तृष्णा के त्याग के सामने संसार में और कोई सुख नहीं है। और माया प्रपंच में फंसने के समान

अन्य कोई दुःख नहीं है। अतः जो प्राणी इस बात का हृदयंगम करके तृष्णा के वशीभूत न होकर कुमार्ग का परित्याग करते हैं, तथा जीव-दया गर्भित जैन धर्म को धारण करते हैं, वे प्राणी महान् पुण्यवान् हैं ॥१५९॥

भ्रुवपरिनिधिभूमिवत्सरे चित्रकूट-
गिरिपदपरिसीमाग्रामचित्तोड़नाम्नि ।
मुनिवरमुपदेशैर्भूरिजैनान्यधर्म-
पथगपुरुषनारीहृत्सरोजान्यफुल्लत् ॥१६०॥

भावार्थ—तत्पश्चात् विक्रम संवत् १९६१ का चातुर्मास आपने चितौड़गढ़ की तलहटी में किया। वहाँ पर भी आपने जैन तथा जैनेतर आबालवृद्ध नर नारियों के हृदय रूपी कमल को अपने उपदेश रूपी प्रखर प्रतापी सूर्य की रश्मियों से विकसित कर दिया ॥१६०॥

पशुवधपरयोपिन्मद्यमांसादिसेवा-
दुरितप्रदतमाखुघ्राणरोमन्थपानम् ।
इतिविदुधुविरेऽस्मिन् रात्रिजग्धिं प्रबोधैः-
सुगुरुपरिचयः किं मङ्गलं नैव धत्ते ॥१६१॥

भावार्थ—वहाँ के नागरिकों ने आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर जीव-हिंसा, परस्त्रीगमन, मद्यपान, मांसभक्षण, घृणित-मादकद्रव्य जैसे तम्बाखू आदि समस्त कुव्यसनों का सेवन एवं

रात्रि-भोजन आदि दुर्गुणों का परित्याग किया। ठीक है, आदर्श पुरुषों के उपदेश से क्या-क्या शुभ कार्य नहीं होते ? अर्थात् सभी शुभ कार्य सम्पन्न हो जाते हैं ॥ १६१ ॥

तत्राजीवनपर्यन्तं ब्रह्मचर्यं परं तपः।
स्वीचक्रे पोषितुं सुज्ञोवृद्धिचन्द्रः सपत्नीकः ॥१६२॥
शीलं पालयितुं श्रेष्ठं भैरुलालो महाजनः।
गडोलियाख्योऽङ्गयकार्षीत्स्वस्त्रिया सहयौवने ॥१६३॥

भावार्थ—चरित्रनायक जी के उपदेश से प्रभावित हो कर चित्तौड़ निवासी श्रीयुत वृद्धि चन्द जी सुराना सरिश्तेदार ने जीवन पर्यन्त सपत्निक ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया। इसी प्रकार नवयुवक भैरुलालजी गडोलिया ने भी अपनी यौवनावस्था होते हुए भी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया ॥१६२-१६३॥

हरितकमुदकं यच्छीतलं रात्रिभोज्यम्,
धरणितलजकन्दं श्रावकाः संविहाय।
गुरुवरशुभबोधे भूपसिद्धार्थसूनु-
ममृतफलसुखाय प्रास्तुवन्कल्पवृक्षम् ॥१६४॥

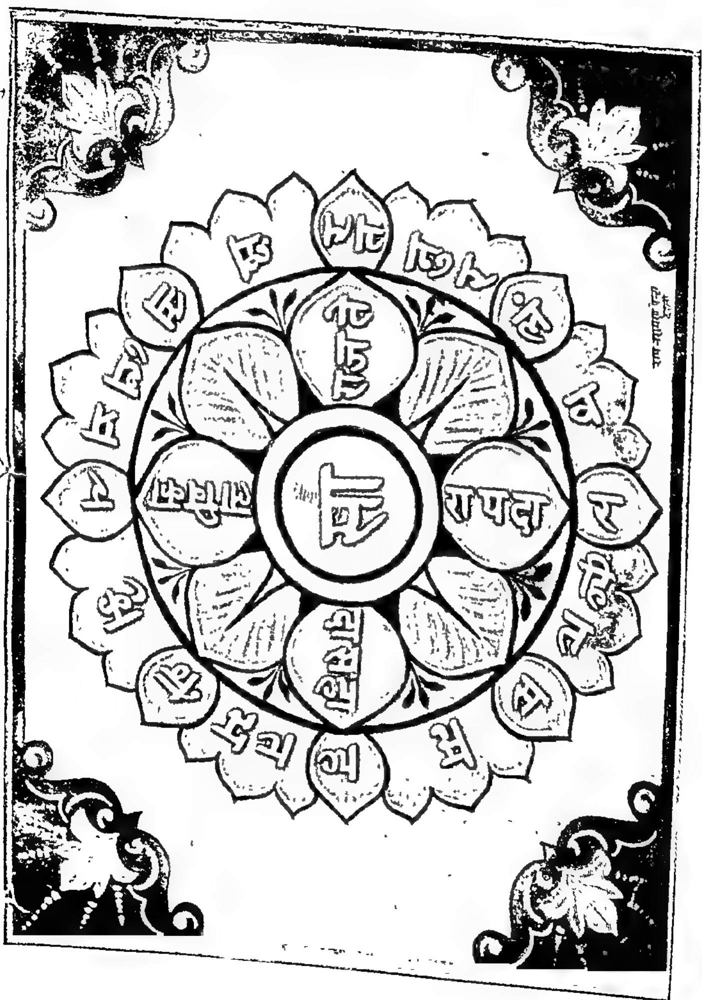
भावार्थ—इसके अतिरिक्त वहाँ के अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने आपके सदुपदेश से हरी, सब्जी, कच्चा पानी, रात्रि-भोजन जमीकन्द आदि का परित्याग कर दिया। और वे सब जैन-धर्म तथा श्री महावीर स्वामी की आराधना में तल्लीन हुए ॥१६४॥

वर्षे नेत्रगुहाननग्रहधरा स्थित्वा पुरे जावरे,
चातुर्मासमहोत्सवं समपुपद्धर्मोपदेशामृतैः ।
तत्साविध्य तपोधनोमुनिवरोऽतापद्धजारीमल-
स्तक्रेणैकनवत्यहानिनियमैः प्रणिष्ट संज्जानतः ॥१६५॥

भावार्थ—तदनन्तर, विक्रम सं० १६६२ का चातुर्मास आपने जावरा में किया। वहाँ पर आपकी शरण में रह कर तपस्वी मुनि श्री हजारीलालजी म० ने अपनी आत्म-शुद्धि के लिए केवल तक्र (छाछ) के आधार पर ६१ दिन का अनशनव्रत धारण किया। इस उग्रतप-व्रत की पूर्ति के दिन भारत के विभिन्न नगरों और ग्रामों से सैंकड़ों ही नहीं, किंतु हजारों की संख्या में नर-नारी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। और उस दिन लगभग दो सौ स्कंध-हुए।

प्रायात्तत्पुरसंस्थितोगुरुवरज्ञानामृतैः सींकितो-
योगाभूपणखूबचन्द्रचरणौ कस्तूरचन्द्रोवणिक् ।
दीक्षार्थी मुनिसत्तमं प्रणयतोऽस्तावीद्भवाब्धिप्लवम्,
सर्वेषामथ च प्रयच्छसि फलं येषां मनोवाञ्छितम् ॥१६६॥

भावार्थ—चरित्रनायकजी के उपदेशामृत को पान करके वहाँ के निवासी चपरोद गोत्रोत्पन्न एक अल्पयस्क बालक श्री कस्तूरचंदजी ओसवाल को तत्क्षण ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। तब वे मुनि श्री खूबचंद्रजी महाराज की सेवा में सादर प्रार्थना करने लगे, कि गुरुजी ! आप सब प्राणियों को संसार रूपी समुद्र



से पार लगा करके उन्हें मनोवाञ्छित मुक्ति-सुख को प्रदान कर रहे हैं। अतः नम्र-निवेदन है, कि आप मुझे भी इस संसार समुद्र से अवश्य ही पार लगाने की कृपा कीजिएगा।

निर्विण्णं तमवेत्यसंसृतिभरात्किस्तूरचन्द्रं मुनिः,
ज्ञात्वा रामपुराय तं प्रदिदिशे दीक्षोत्सुकं मानसम्।
श्रीश्रीश्रीगुरुनन्दलालसविधे साधोः पदं प्रापितुम्,
तत्रागात्त्वरया पुनः समभितु स्वात्मानमाशोधितम्॥१६७
श्रीमान्नन्दलालजिन्मुनिवरः संघाज्ञया तं वरम्,
दीक्षां संप्रददे महेन सहितां संवीक्ष्य तद्योग्यताम्।
वैराग्यस्य सुपूर्णभावभरितं संसारनिर्वेदिनम्,
नेश्रायं पुनरादिदेशसविधं श्रीखूबचन्द्रस्य तम्॥१६८॥

भावार्थ—चरित्रनायकजी ने वैराग्य-भावी श्री कस्तूरचन्दजी की प्रार्थना पर ध्यान देकर फरमाया, कि, तुम गुरु महाराज की सेवा में उपस्थित होकर रामपुरा में उनके पास दीक्षित हो सकते हो। चरित्रनायकजी की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके वैराग्य भावी श्री कस्तूरचन्दजी ने रामपुरा की ओर प्रस्थान किया। और वहाँ पहुँच कर उन्होंने गुरुजी श्री नन्दलालजी म. से दीक्षा प्रदान करने की नम्र-प्रार्थना की। तब संघ की सम्मति से इनकी योग्यता देखकर गुरुवर्य श्री नन्दलालजी म. ने इनको कार्तिक शुक्ला १३ के दिन दीक्षा प्रदान की। फिर इन नवदीक्षित मुनि श्री कस्तूरचंदजी

म० को हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंदजी म. के नेश्रित कर दिये ॥१६७-१६८॥

गङ्गागग्रहगह्वारीपरिमिते वर्षे समारोहणे,
चातुर्मासमनेष्ट तत्र सुमतिश्चितौड़नाम्नि पुरे ।
वर्षेऽस्मिन्बडिसादड़ीं सुविनयी कस्तूरचन्द्राग्रजो-
दीक्षायै गुरुसत्तमं सविनय श्री नन्दलाल ययौ ॥१६६॥

भावार्थ—विक्रम संवत् १९६२ का चातुर्मास आपने चितौड़गढ़ में किया। उसी वर्ष वड़ी सादड़ी में आपके सुशिष्य श्री कस्तूरचन्दजी म. के सांसारिक ज्येष्ठ बन्धु जावरा-निवासी श्री केसरीमल जी चपरोद, गुरुवर्य श्री नन्दलाल जी म० की सेवा में उपस्थित हुए। और विनय पूर्वक दीक्षा के लिए प्रार्थना की ॥१६६॥

श्री नन्दलालो मुनिसत्तमस्तम्
संघाज्ञया दीक्षितकं विधाय
नेश्रायके चारितनायकस्य ।
चकार सर्वं परिचिन्त्य भावम् ॥१७०॥

भावार्थ—तब श्री संघ की आज्ञा से गुरुवर्य श्रीनन्दलालजी म० ने इन्हें दीक्षित करके हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी महाराज की नेश्राय में कर दिये ॥१७०॥

आम्नातर्कनिधिक्षितिप्रचलिते श्रीखूबचन्दोगुरु-
श्चातुर्मासमहोत्सवाय समयाच्छ्रीनिम्बाहाडापुरे ।

तत्स्थाने बडिसादडीस्थितिकरः श्रीहर्षचन्द्रोऽसिते,
मार्गे च प्रतिपत्तिथौ बुधदिने शिष्यश्चतुर्थोऽभवत् ॥१७१

भावार्थ—आपने विक्रम संवत् १९६४ का चातुर्मास निम्बा-हेड़ा में किया। और वहाँ मार्गशीर्ष कृष्णा १ बुधवार को बड़ी सादड़ी निवासी श्री हर्षचन्दजी अपर नाम रामप्रसादजी अग्रवाल को दीक्षित किये। इस प्रकार आपके अब तक चार शिष्य हुए। यहाँ चातुर्मास में तपस्या आदि धर्मवृद्धि बहुत हुई ॥१७१॥

प्राणाङ्गाङ्कवसुन्धराप्रमुदितेऽब्दे विक्रमोर्वीभृत-
श्चातुर्मासमनेष्ठधर्मनिपुणश्छोट्याह्वयासादडीम् ।
ऊर्जेपूर्णशशाङ्करम्यदिवसे श्रीजावराग्रामिकः-
त्वै पोदत्रकटारियाकुलमणिः श्रीरामलालाभिधः ॥१७२॥
प्रेम्णा स्वीयसुतं हजारिमलमानीयप्रवीणं गुरुम्,
दीक्षां दातुमवेष्ट पादकमलं प्राप्पुजच्छ्रद्धया ।
शिष्योऽभूत्किलपञ्चमः शुचिमतिः श्रीमद्धजारिमलः-
पञ्चप्राणसमस्वशिष्यगणतोविभ्राजते स्म मुनिः ॥१७३॥

भावार्थ—वि०सं० १९६५ का चातुर्मास छोटी सादड़ी में हुआ। यद्यपि वहाँ पर स्थानकवासियों के घर कम थे। तथापि धर्म-प्रभावना बहुत अच्छी हुई। वहाँ पर जावरा-निवासी कटारिया गोत्र के रत्न श्री रामलालजी अपने पुत्र श्री हजारीमल (इस चरित्र के लेखक) को लेकर आये। और प्रसन्नता पूर्वक अपने

हार्दिक भावों से सादर अनुमति देते हुए कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन दीक्षा ग्रहण करवाई। अब मुनि श्री खूबचंद जी म० इस समय अपने प्राणों के समान पाँच प्रिय शिष्यों से अत्यन्त शोभायमाम् हुए ॥१७२-१७३॥

रिप्वर्यङ्कशशीमिते शुभतमे श्रीवैक्रमे वत्सरे,
चातुर्मासमहोत्सवं समनयत् श्रीमन्दसौरे मुनिः ।
व्याख्यानाद्भवतो बभूवजनता कल्याणकं सौख्यदम्
लोकाः कर्मनिवर्हणाय च बहु संतेनिरे संवरम् ॥१७४॥

भावार्थ—वि० सं० १९६६ का चातुर्मास मन्दसौर में हुआ। वहाँ पर आपके सदुपदेश से जनता का बड़ा भारी कल्याण हुआ नर-नारियों ने अपने कर्मों के निवारणार्थ संवर किया ॥१७४॥

द्वीपार्यम्बुदचन्द्रमः परिमिते व्यातीच्च संवत्सरे,
चातुर्मासमहोत्सवं सुनगराग्रायाञ्च तत्र स्थले ।
मुग्धाः सद्गुरुवाक्पतिसमभवन् तच्छ्रावकाः श्राविकाः,
धर्मध्यानदयोपवासकरणाद्यायंबिलं दिग्यिरे ॥१७५॥
यद्वाचा तरणित्विषेवकलितोल्लासं मनः पङ्कजं,
बिभ्रच्छ्रीयशवन्तरावशुचिधीगाम्भीर्यपाथोनिधिः ।
सौजन्यामृतसागरः परहितप्रारब्धवीरव्रतो-
भात्याग्रापुरभूषणः प्रियकरः क्रोधश्च नालम्बते ॥१७६॥
दाक्षिण्यं प्रभुताधनं त्रयमिदं यत्रैकसंस्थं भवे-

तत्रास्ते न विवेकता सनयैर्वैरोधभावोयतः ।
एवं सत्यपि साम्प्रतं त्रयमिदं संसेवितोऽहर्निशम्,
श्रेष्टश्रीयशवन्तरायनयधीर्निर्मत्सरो दृश्यते ॥१७७॥
मेरुर्मानितया धनैर्धनपतिर्वाचा च वाचस्पति-
र्भोगेनापि पुरन्दरः शुचितया दानेन चिन्तामणिः ।
गाम्भीर्येण महोदधिः करुणयाप्यन्यश्च ताथागतः,
श्रीसिद्धार्थनरेशसुनुपदयोर्भक्तश्च पूर्णः सदा ॥१७८॥
रक्तोऽयं गतिभावभाजिचरणे स्मेरास्य पङ्करुह,
प्रक्रीडनपरमेष्टिवाहनतया प्राप्तप्रतिष्ठप्रभः ।
श्रेष्टः श्रीयशवन्तराय उचितोयोगप्रवीणाज्ञया,
जीवालम्भमरूरुधत्करुणया सांवत्सरीपर्वणि ॥१७९॥

भावार्थ—विक्रम संवत् १९६७ में, आपका चातुर्मास संयुक्त प्रान्त के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर आगरा में हुआ । वहाँ पर, आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर, श्रावक-श्राविकाओं ने धर्म-ध्यान, दया, उपवास एवं आयम्बिलादि बहुत से धार्मिक कृत्य किये ॥१७५॥ और आपकी पवित्र वाणी द्वारा सद्बोधित हो कर, सद्बुद्धि सम्पन्न, गम्भीरता के सागर, सौजन्य-सिन्धु, परहित-व्रत धारी, शान्तचित्त श्रीमान् सेठ यशवन्तरायजी का हृदय, इस प्रकार प्रफुल्लित हुआ, जैसे कि सूर्य की किरणों से कमल विकसित होता है ॥१७६॥ श्रीमान् सेठ यशवन्तरायजी युवावस्था,

राज्यसम्मान और लक्ष्मी इन तीन प्रकार के मदों से संयुक्त होते हुए भी, अभिमान से कोसों दूर थे । अर्थात् वे परम शान्त स्वभावी और निरभिमानी थे ॥१७७॥ यह सेठ जी सच्चे भक्त, लक्ष्मी सम्पन्न, योग्य वैभवशाली, तेजस्वी, दानी, गम्भीर और परम दयालु थे ॥१७८॥ इस प्रकार भगवान् महावीर के सच्चे भक्त श्रीमान् सेठ यशवन्तरायजी ने हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्द्रजी महाराज के सदुपदेश से प्रेरित हो कर, संवत्सरी पर्व के दिन, आगरा नगर के चार प्रसिद्ध कत्लखाने, जिनमें कि हजारों पशुओं का वध होता था, बन्द करवा दिये ॥१७९॥

आग्रातोमथुरादिकञ्च विहरन् दिल्लीं तत आययौ,
तत्र श्रीमुनिलालचन्द्रजरठा आसन्तदातान्पुनः ।
प्रामेलिष्टययौ ततोऽमृतसरं श्रीलालचन्द्रास्तदा,
कालिन्द्याः पुलिनं परं मुनिमनु प्रेम्णागताः भावतः ॥

भावार्थ—आगरा नगर का चातुर्मास समाप्त करके मथुरा, कोसी, पलवल आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए आपका शुभागमन भारत की सुप्रसिद्ध राजधानी दिल्ली में हुआ । इस समय दिल्ली में पंजाबी सम्प्रदाय के मुनि श्री लालचन्दजी महाराज विराजमान थे । आप ब्रह्मचारी तथा स्थविर-पद-विभूषित थे । हमारे चरित्र-नायकजी दिल्ली पहुँचते ही उनसे मिले भेंटे । परस्पर बड़ा ही प्रेम तथा वात्सल्यता का व्यवहार रहा । वहाँ से आपने अमृतसर की

ओर प्रस्थान किया। जब दिल्ली से आपकी विदाई हुई, तब स्थविर-पद-विभूषित मुनि श्री लालचन्दजी महाराज आपको यमुना नदी के पुल के पार तक पहुँचाने गये ॥१८०॥

देहलीतोलुहाराञ्च सरायं वामनोलिकाम् ।
सरसलीं हीलवाडीं वडौतं कान्धालां तथा ॥१८१॥
तीतर्वाडाञ्च कर्नालं वर्सतं कुरुक्षेत्रकम् ।
अम्बालाञ्च रमणीयं पटियालापुरं तथा ॥१८२॥
नाभां मालेरकोटञ्च लुधियानां कपूर्थलाम् ।
जालंधरं भूंडियालां गुरुर्योगारिनन्दभू ॥१८३॥
वर्षेऽमृतसरस्थाने स्वल्पकालं समाधृत ।
श्रद्धासमृद्धिसम्बन्धबन्धुरस्तत्वविदमुनिः ॥१८४॥

भावार्थ—आप दिल्ली से प्रस्थान करते हुए लुहारासराय, वामनौली, सरसली हिलवाड़ी, बड़ौत, कान्धला, तीतरवाड़ा, बड़सत, करनाल, कुरुक्षेत्र, अम्बाला, पटियाला, नाभा, मालेरकोटला, लुधियाना, कपूरथला, जालन्धर और भण्डियाला आदि क्षेत्रों में अपने सदुपदेश द्वारा जैन धर्म के पवित्र सिद्धान्तों का प्रचार करके विक्रम संवत् १९६८ में अमृतसर पधार गये ॥१८१-१८४॥

जैनेतराणि जनान् प्रतिबोधते स्म,
विद्यादयादमयमादिकसेवनाय ।
रोद्धुं तथेन्द्रियविकारमनर्थकारम्,

पातुं जिनेन्द्रकथितं जिनधर्मतत्वम् ॥१८५॥
अन्याङ्गनापिशितमद्यनिशाशनानि,
द्यूतं तमाखुमनृतं व्यजहुश्च हिंसाम् ।
शीलव्रतोद्यमतपः परिसेवनार्थम्,
प्राचक्रिशरे गुरुकृपामृतसिक्तलोकाः ॥१८६॥

भावार्थ—चरित्रनायकजी ने उपरोक्त सभी क्षेत्रों के जैन-जैनतरों को विद्या, दम, यम, आदि प्राप्त करने तथा इन्द्रिय सम्बन्धी विकारों को त्याग देने का उपदेश दिया। और समझाया, कि विद्या, दम.यम, आदिके द्वारा सद्गति प्राप्त होती है। और इन्द्रिय सम्बन्धी विकारों से अधोगति प्राप्त होती है। इस प्रकार जिन देव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के सार द्वारा, नर-नारियों को सन्मार्ग पर लगाए ॥१८५॥ आपके सदुपदेश से अनेक प्राणियों ने पर स्त्री-गमन, माँस-भक्षण, मदिरा-पान, रात्रि-भोजन, द्यूतक्रीड़ा, तम्बाखू-सेवन, असत्य-भाषण और हिंसा करने का परित्याग किया तथा शीलव्रत-पालन एवं तप की आराधना में तत्पर हुए ॥१८६॥

देशे यत्र पुरेषु येषु विहृतिं प्रातीतनच्छ्रीगुरु-
र्वाक्यैर्हृद्रुचितैर्मितैर्हितकरैर्जैनैरिवाकर्कशैः ।
चारित्रोपकृतिप्रदानविधिनाऽतोष्यत्पुरस्थान्जनान्,
जीवामारिरहर्निशं व्रतकृतिर्दीनोद्धृतिर्भाविनाम् ॥१८७॥

भावार्थ—आपने जिस देश नगर या ग्राम में निवास किया, वहीं पर मधुर, परिमित, रुचिकर, हितकारी और चारित्रोचित व्याख्यानों से श्रोता-समाज के हृदय को आकर्षित करके अहिंसा एवं पतितोद्धार का प्रचार किया ॥१८७॥

श्रीमान्सोहनलालजिज्जिनमताचार्यो मुनीन्द्रास्तथा,
तद्व्याख्यानसमाश्रितानयपटुं प्रभाज्ज्वलयशः ।
प्रयात्सोपि महामुदेन नगरं शोभाभि संभूषितं,
योगीन्द्रः स मुनि सरान्तममृतं गुज्रानवालां ततः ॥१८८॥

भावार्थ—वहाँ से विहार करके हमारे चरित्रनायकजी अमृतसर शहर में पधारे। वहाँ पर आपका श्रेष्ठ स्वागत हुआ। उस समय वहाँ पर श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज अपने शिष्य-मण्डल सहित विराजमान थे। वहाँ पर आचार्य महोदय तथा हमारे चरित्रनायकजी के व्याख्यान एक ही स्थान पर होते थे। आपके ओजस्वी व्याख्यानों का पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने बड़ी प्रशंसा की। तथा बड़ा प्रेम-भाव प्रकट किया। वहाँ से विहार कर आप गुजराँवाला पधारे ॥१८८॥

मुन्नालालमुनीश्वरञ्च सुखदं शिष्यैः शुभैः शोभितम्,
ग्रामेलिष्टतपोधनं मुनिवरं श्रीबालचन्द्रं तथा ।
यात्वा स्वभ्रमणे तदा च वजिराबादञ्च कुञ्जां ततो,
दानज्ञानधनाय दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये ॥१८९॥

शीलानां निचयस्तदा समगमल्लालामुसां जेलमम्,
योगात्माशुचिरोहितासनगरीमालोक्य भव्योत्सवैः ।
यागे कल्लरसैय्यदां प्रणमतः संप्रार्चितः श्रद्धया,
चान्ते रावलपिण्डकाख्यनगरेऽवात्सीत्प्रतिष्ठाप्रभः॥१९०॥

भावार्थ—गुजराँवाला में विद्वद्वर्य मुनि श्री १००८ श्रीमुन्नालाल जी महाराज तथा तपस्वी श्री १००५ श्री वालचंद्रजी महाराज विराजमान् थे । अतः चरित्रनायकजी उनकी सेवा में पधारे और कई दिनों तक उनकी सेवा में निवास किया । फिर उनकी आज्ञानुसार रावलपिंडी में चातुर्मास करने का निश्चय करके, वहाँ से प्रस्थान कर दिया। इस प्रकार शीलादि गुणों से अलंकृत योगनिष्ठ. हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंद्रजी महाराज गुजराँवाला से, लालमूसा, झेलम, रोहतास और कल्लरसैयदा को पावन करते हुए रावलपिण्डी पधारे ॥१८९-१९०॥

योगाङ्काङ्कवसुन्धरापरिमिते संवत्सरे शोभने,
चातुर्माससमहोत्सवं समसिधच्छिष्यैः शुभैस्तत्स्थले ।
जैनन्यायगिराविवादपदवीमारोप्य निर्घाटितः,
साध्वाचार्यविधेः पथः शिथिलतः सम्यक्क्रियांधाम यः ॥
वृद्धत्वेनजरद्गवं शमयुतं प्राधीतनैकागमम्,
तत्रस्थं स्थविरं ददर्शमुनिपं श्रीधन्निरामेण तम् ।

नाम्ना श्रीशिवलालकं मुनिवरः संप्राप्य तत्स्वागतम्,
धन्नीराममुनीश्वरं भगवतीसूत्रं पराध्यापिपत् ॥१६२॥

भावार्थ—इस प्रकार वि० सं० १६६८ का चातुर्मास आपने रावलपिंडी में किया। वहाँ पर आपने अपने जैन-धर्म के अकाट्य सिद्धान्तों द्वारा जनता की मिथ्या शंकाओं को निवारण किया। और लोगों को जैन धर्म के कट्टर अनुयायी बनाये। उस समय वहाँ पर बहुसूत्री स्थविर-पद-विभूषित मुनि श्री शिवलालजी महाराज वृद्धावस्था के कारण स्थिर-वासी थे। और आपकी सेवा में मुनि श्री धनीरामजी महाराज थे। अतः वहाँ चरित्रनायकजी भी उनके पास पधारे। उन्होंने बड़े प्रेम पूर्वक आपका स्वागत किया। तथा उनके समीपवर्ती मुनि श्री धनीरामजी म० ने चरित्र-नायकजी के द्वारा श्री मद्भगवती जी सूत्र का अध्ययन करने की प्रार्थना की। तब चरित्रनायकजी ने उनको भगवती जी सूत्र पढ़ाया ॥१६१-१६२॥

तत्पश्चान्निजवर्त्मनीडितमतिः श्रीश्यालकोटं पुरम्,
प्रायात्काश्मिरमञ्जुजम्मुनगरं धर्मप्रचाराय सः।
स्थित्वा तत्र कियद्दिनानि सुकृतप्रारम्भसंवर्द्धनम्,
सोत्कर्षः पुरतस्ततोऽथ चलितोयोगीश्वरोहर्षतः ॥१६३॥
ग्रामानेकपुराणिपावितमहीपीठानि नित्याक्रमा-
दुल्लंघ्याशुगतः सुसाधुकलितोलाहोरपुर्यां ततः।

भूयोभिर्वृतिभिर्बुधैः परिवृतोऽपावित्प्रजाभिस्तदा,
सामोदं सरसं सरोरुहवनं लीलामरालः समः ॥१६४॥

भावार्थ—वहाँ से विहार करके आप मार्ग में स्यालकोट नगर में कुछ दिन ठहर कर, स्वर्गोपम काश्मीर देशस्थ अलौकिक शोभा-सम्पन्न जम्मू नगर में पधारे। वहाँ पर उस समय विद्वद्वर्य मुनि श्री १००८ श्री मुन्नालालजी महाराज तथा तपस्वी श्री १००५ श्री बालचन्द जी महाराज विराजमान् थे। अतः आप भी वहाँ, उन की सेवा में एक मास तक विराजे। जिस प्रकार हंस अनेक सरा-वरों को अपनी लीलामय स्थिति से अलंकृत करता हुआ जाता है, उसी प्रकार हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचंदजी महाराज मुनियों के वृन्द सहित नित्य प्रति विहार करते हुए, अनेक गावों तथा पुर-वासियों को अपने सदुपदेश द्वारा पवित्र करते हुए, पुनः उसी मार्ग से लाहौर पधारे ॥१६३-१६४॥

पश्नोत्तरे चारुचरित्रयोगी, ज्ञानस्वरूपं शुचिदं चरित्रम् ।
विनिर्मलैः पार्वणचन्द्रकान्तैः संस्फूर्च्छेतिश्रीप्रभुवीरवाक्यैः
अनेकपर्यायगुणैरुपेतं विलोक्यते येन समस्ततत्वम् ।
तदिन्द्रियानिन्द्रियभेदभिन्नं ज्ञानं जिनेन्द्रैःकथितं हिताय
रत्नत्रयीं रक्षति येन जीवो विरज्यतेऽत्यन्तशरीरसौख्यात् ।
रुणद्धि पापं कुरुते विशुद्धिं ज्ञानं तदर्थं सकलार्थविद्भिः ॥
क्रोधं धुनीते विदधाति शांतिं तनोति मैत्रीं विनिहन्ति मोहम

पुनाति चित्तं मदनं लुनीते येनेह बोधं तमुशन्ति सन्तः ॥
यथा यथा ज्ञानबलेन जीवो जानाति तत्वं जिननाथदृष्टम् ।
तथा तथा धर्ममतिप्रसक्तः प्रजायते पापविनाशशक्तः ॥१९९
शक्योविजेतुं न मनः करीन्द्रोगन्तुं प्रवृत्तः प्रविहायमार्गम्
ज्ञानांकु शेनात्र विना मनुष्यैर्विनांकुशं मत्तमहाकरीव॥२००
दयाक्षमाशौचतपः प्रभावशीलप्रवृत्यादिकतोपभावैः ।
सत्यैश्च भावैः परिसेव्यते यत्तत्कर्मचारित्रपदं तनोति ॥२०१

भावार्थ—प्रश्नों के उत्तर देने में चतुर, योगनिष्ट श्री खूबचंद्र जी म० ने यहाँ पर निर्मलचन्द्र के समान आह्लाद को देने वाले श्री जिनेश्वर भगवान् कथित वाक्यों द्वारा ज्ञान और चारित्र का स्वरूप भली भाँति समझाया ॥१९५॥ जिस वस्तु के द्वारा पर्याय, गुण और तत्वों का बोध होता है। तथा इन्द्रिय और मन के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों की पहिचान होती है। उसी वस्तु को श्री वीर प्रभु ने ज्ञान कहा है ॥१९६॥ ज्ञानी जीव, रत्न-त्रय ( सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ) की, जो कि मोक्ष के मार्ग स्वरूप हैं, रक्षा करता है। शारीरिक सुख से अत्यन्त विरक्त हो जाना, तथा पापों को रोक कर आत्म-विशुद्धि को धारण करना, यही ज्ञान के मुख्य प्रयोजन हैं ॥१९७। जिस ज्ञान के द्वारा क्रोध एवं मोह नष्ट हो जाता है, तथा शांति और मैत्री-भाव उत्पन्न होता है, उसी ज्ञान को सज्जन लोग वास्तविक ज्ञान कहते हैं ॥१९८॥ ज्यों-

भूयोभिर्व्रतिभिर्बुधैः परिवृतोऽपावित्प्रजाभिस्तदा,
सामोदं सरसं सरोरुहवनं लीलामरालः समः ॥१६४॥

भावार्थ—वहाँ से विहार करके आप मार्ग में स्यालकोट नगर में कुछ दिन ठहर कर, स्वर्गोपम काश्मीर देशस्थ अलौकिक शोभा-सम्पन्न जम्मू नगर में पधारे। वहाँ पर उस समय विद्वद्वर्य मुनि श्री १००८ श्री मुन्नालालजी महाराज तथा तपस्वी श्री १००५ श्री बालचन्द जी महाराज विराजमान् थे। अतः आप भी वहाँ, उन की सेवा में एक मास तक विराजे। जिस प्रकार हंस अनेक सरोवरों को अपनी लीलामय स्थिति से अलंकृत करता हुआ जाता है, उसी प्रकार हमारे चरित्रनायक मुनि श्री खूबचंदजी महाराज मुनियों के वृन्द सहित नित्य प्रति विहार करते हुए, अनेक गावों तथा पुर-वासियों को अपने सदुपदेश द्वारा पवित्र करते हुए, पुनः उसी मार्ग से लाहौर पधारे ॥१६३-१६४॥

पश्नोत्तरे चारुचरित्रयोगी, ज्ञानस्वरूपं शुचिदं चरित्रम् ।
विनिर्मलैः पार्वणचन्द्रकान्तैः संस्फूर्च्छतिश्रीप्रभुवीरवाक्यैः
अनेकपर्यायगुणैरुपेतं विलोक्यते येन समस्ततत्त्वम् ।
तदिन्द्रियानिन्द्रियभेदभिन्नं ज्ञानं जिनेन्द्रैःकथितं हिताय
रत्नत्रयीं रक्षति येन जीवो विरज्यतेऽत्यन्तशरीरसौख्यात् ।
रुणद्धि पापं कुरुते विशुद्धिं ज्ञानं तदर्थं सकलार्थसिद्धिः ॥
क्रोधं धुनीते विदधाति शांतिं तनोति मैत्रीं विनिहन्ति मोहम

पुनाति चित्तं मदनं लुनीते येनेह बोधं तमुशन्ति सन्तः ॥
यथा यथा ज्ञानबलेन जीवो जानाति तत्वं जिननाथदृष्टम् ।
तथा तथा धर्ममतिप्रसक्तः प्रजायते पापविनाशशक्तः ॥१९९
शक्योविजेतुं न मनः करीन्द्रोगन्तुं प्रवृत्तः प्रविहायमार्गम्
ज्ञानांकु शेनात्र विना मनुष्यैर्विनांकुशं मत्तमहाकरीव॥२००
दयाक्षमाशौचतपः प्रभावशीलप्रवृत्त्यादिकतोपभावैः ।
सत्यैश्च भावैः परिसेव्यते यत्तत्कर्मचारित्रपदं तनोति ॥२०१

भावार्थ—प्रश्नों के उत्तर देने में चतुर, योगनिष्ट श्री खूबचंद्र जी म० ने यहाँ पर निर्मलचन्द्र के समान आह्लाद को देने वाले श्री जिनेश्वर भगवान् कथित वाक्यों द्वारा ज्ञान और चारित्र का स्वरूप भली भाँति समझाया ॥१९५॥जिस वस्तु के द्वारा पर्याय,गुण और तत्वों का बोध होता है। तथा इन्द्रिय और मन के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों की पहिचान होती है। उसी वस्तु को श्री वीर प्रभु ने ज्ञान कहा है ॥१९६॥ ज्ञानी जीव, रत्न-त्रय ( सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ) की, जो कि मोक्ष के मार्ग स्वरूप हैं, रक्षा करता है। शारीरिक सुख से अत्यन्त विरक्त हो जाना, तथा पापों को रोक कर आत्म-विशुद्धि को धारण करना, यही ज्ञान के मुख्य प्रयोजन हैं ॥१९७। जिस ज्ञान के द्वारा क्रोध एवं मोह नष्ट हो जाता है, तथा शांति और मैत्री-भाव उत्पन्न होता है, उसी ज्ञान को सज्जन लोग वास्तविक ज्ञान कहते हैं ॥१९८॥ ज्यों-

ज्यों यह जीव ज्ञान-बल से भगवान् वीर प्रभु द्वारा भाषित तत्व को जानता है, त्यों-त्यों वह पाप का विनाश करता हुआ, धार्मिक भावों को प्राप्त करता है ॥१९९॥ जिस प्रकार मदोन्मत हाथी विना अंकुश के वशीभूत नहीं होता, उसी प्रकार यह मदोन्मत्त मन रूपी हस्ती भी ज्ञान रूपी अंकुश के विना कभी वशीभूत नहीं हो सकता है ॥२००॥ दया, क्षमा, शौच, तप, शील, संतोष, एवं सत्य आदि से जो यथोचित क्रिया की जाती है, उसी को चारित्र कहते हैं।

लाहोराद् मुनिसत्तमः समचरद्ग्रामेकसूराभिधे,
तत्स्थानाच्च फरीदकोटमगमत्कोटाकपूर्भण्डिकाम् ।
रामामण्डिमयात्स्वकीयपथगं यज्जेतुमंडीं तथा,
रोहानांपुरजिन्दमेनमनुपे प्रायाद्भटींडापुरे ॥२०२॥
एवं रोहतकं समैष्ट निगमं प्रेक्षिष्ठ तत्र स्थितम्,
साध्वाचारविभूषितं मुनिवरं श्रीमन्मयारामकम् ।
सप्रेमामृतचक्षुषा सुमनसा तं शिष्यवृन्दान्वितम्,
सोऽप्रैक्षिष्ट चकार वासमुचितं तत्सङ्गहार्दाग्रहैः ॥२०३॥

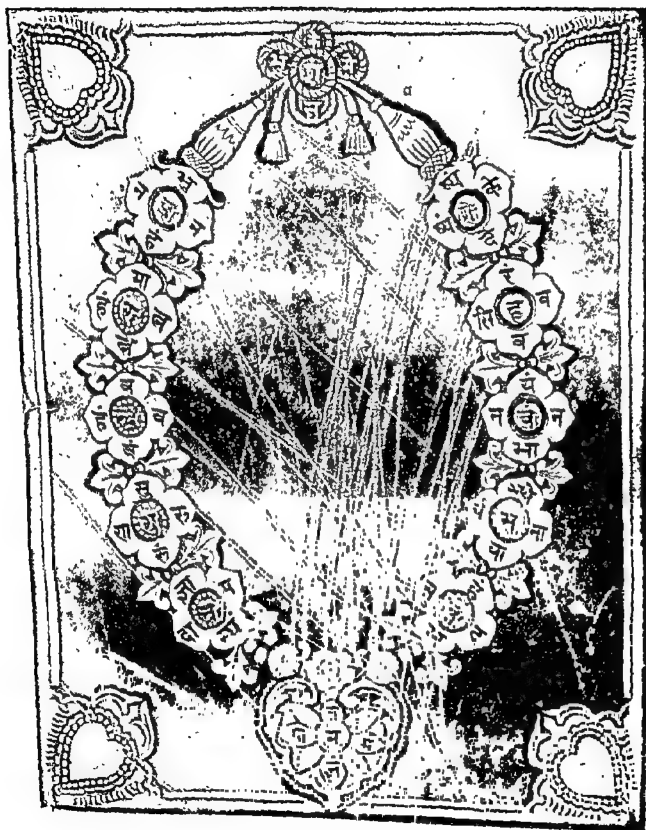
भावार्थ—तदन्तर लाहौर से विहार करके कसूर, फरीदकोट, भटींडा और जींद आदि अनेक नगरों तथा ग्रामों को अपने सदुपदेश से पवित्र करते हुए, मुनि श्री खूबचन्द्र जी महाराज रोहतक पधारे। रोहतक में पंजाब-देश-पावन-कर्ता, कृपालु, वैराग्य मूर्ति श्रीमान् मुनि मायारामजी महाराज, अपनी शिष्य मण्डली सहित

विराजमान् थे। उनसे हमारे चरित्रनायकजी शुद्ध हृदय से प्रेम पूर्वक मिले। और रोहतक श्री संघ के विशेष आग्रह से कुछ दिन वहीं ठहरे। जब आप वहाँ से अन्यत्र पधारने लगे, तो पुनः वहाँ के भाइयों द्वारा ठहरने की आग्रह भरी विनती होने पर, कुछ दिन और भी वहाँ ठहरे। यहाँ पर दिल्ली का श्री संघ, मुनि श्री मायारामजी महराज की सेवा में, चातुर्मास की विनती करने के लिए उपस्थित हुआ। श्रीमान् मुनि मायारामजी म० ने हमारे चरित्रनायकजी के सारगर्भित व्याख्यान की दिल्ली श्री संघ के समक्ष भूरि-भूरि प्रशंसा की। और स्वयं विशेष रूप से यह फरमाया, कि अब की बार मुनि श्री खूबचंद्रजी म० का चातुर्मास देहली में होना चाहिए क्योंकि आपके चातुर्मास में वहाँ पर बहुत ही धर्मोद्योत हो सकता है। इस कथन को सुन कर दिल्ली के श्री संघ ने चातुर्मास के लिए चरित्रनायकजी से आग्रह पूर्वक विनती की। अतः देहली संघ के आग्रह को आप टाल नहीं सके और संवत् १९६९ का चातुर्मास दिल्ली में करना स्वीकार किया ॥२०३॥

व्यातीद्दिल्लिपुरे ततोमुनिवरः सङ्घाग्रहेणोज्वल-
श्चातुर्मासमहोत्सवं ग्रहरसद्वाराचनीवत्सरे।
निष्कामोऽपि समिष्टमुक्तिवनिताकाङ्क्षी सदा संयतः,
सत्यारोपितमानसोधृतव्रतोऽप्यनर्थप्रियोऽप्यप्रियः ॥२०४॥
कैश्चिद्यद्वदनोपमानमनवं दत्तं कवीन्द्रैः शशी,

विद्वद्वृन्दमनः सरोजमकरोद्वाक्यामृतैः फुल्लितम् ।
श्रीमत्स्थानकवासिधर्मतिलकोवादीभपञ्चाननः,
प्रास्फूर्जज्जिनचारुधर्मविजयश्रीवैजयन्तीं तदा ॥२०५॥
मालव्यं शुभमेदपाटनिगमं पातुं मरालां ययौ,
बोधित्वा शुचिकाण्डसाजनपदं सौनां नवग्राहिकाम् ।
एवं व्हादरपुःस्थितान् जिनगमान् सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः,
कामक्रोधमदादिकैश्च रहितः प्रायाद्यतीशाग्रणीः ॥२०६॥

भावार्थ—फिर संवत् १९६९ का चातुर्मास श्री संघ के अत्याग्रह से आपने देहली में किया। वहाँ पर चरित्रनायकजी निष्काम होते हुए भी मुक्ति-कामिनी के इच्छुक बने रहे । तथा सत्यारोपित मन वाले होते हुए भी आपने अपने को सत्यावादी की उपमा से प्रसिद्ध करना योग्य नहीं समझा । इसी प्रकार पूजनीय होते हुए भी आपको अपनी स्तुति अप्रिय मालूम होती थी । यों आप देहली में उत्तरोत्तर अधिकाधिक शोभा को प्राप्त होने लगे ॥२०४॥ वहाँ पर आपने अपने मुख-चन्द्र से वाक्य रूपी चन्द्रिका को छिटका कर विद्वानों के हृदय रूपी कुमोदिनी को विकसित किया । यों स्थानकवासी समाज के मुकुट-मणि, चर्चावादी रूपी हस्तियों के समूह में एरावत हाथी के समान मुनि श्री खूबचन्द्रजी महाराज ने जैन धर्म की ध्वजा को फहराया॥२०५॥ इस प्रकार काम-क्रोधादि से रहित होकर आपने देहली का चातुर्मास पूर्ण किया । और फिर वहाँ से महरौली, झाड़सा, सोना,



Calcutta Art Press Delhi

नागावाँ तथा बहादुरपुर आदि गाँवों में जैन धर्म का प्रचार करते हुए आपने मालवा और मेवाड़ की तरफ विहार किया ॥२०६॥

अलवरपुरजैनं सम्प्रदायं स्वकीयम्,
जिनविभुमुखवाचाऽपिप्रयच्छोतृवृन्दम् ।
सकलजिनपतिभ्यः पावनेभ्योविनुत्य,
मुनिपतिरवितुं योऽकंस्तधर्मप्रभावम् ॥२०७

भावार्थ—विहार करते हुए आपका शुभागमन अलवर नगर में हुआ। आपके पावन दर्शनों से अलवर के जैन-समाज के आबाल-वृद्ध नर-नारियों का हृदय-सागर आनंद की तरंगों से उमड़ पड़ा। वहाँ से फिर आपने अपने परम पूज्य तीर्थकरों को प्रणाम करके धर्म-प्रभावना के लिए आगे को प्रस्थान किया ॥२०७

ढूंढारस्थितजैनधर्मनितरान् संतुष्यहर्षान्वितः,
प्रायाच्छ्रीजयपूःस्थले समिलत्तत्र स्थितं योगिनम् ।
सम्प्रीयप्रणयेन शुभ्रविनयाचार्य सुचन्द्रान्वितम्,
एवं प्रज्ञविभूषणश्च शिवजीरामञ्च संवेगिनम् ॥२०८॥

भावार्थ—ढूँढ़ार देश-निवासी जैन धर्मावलम्बियों को संतुष्ट करते हुए आपने जयपुर की भूमि को पावन किया। इस समय वहाँ पर श्री मज्जैनाचार्य श्री विनयचन्द्रजी म० विराजमान् थे। अतः आपने उनके दर्शन किये। वे भी चरित्रनायकजी से मिल कर अत्यन्त प्रसन्न हुए इसी प्रकार जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के संवेगी साधु श्री शिवजीरामजी भी उस समय वहीं पर विराजमान् थे। अतः वे भी आप से मिल कर परम प्रसन्न हुए ॥२०८॥

# चतुर्थ परिच्छेद

## मालवा और मेवाड़ में धर्म-प्रचार

ततोऽयं योगीन्द्रः किशनगढ़मायात्सपदि तत्,
स्थलात्सङ्घस्नेहैरजयमरुमेद्धर्मनिवहः ।
स्मरक्रोधाद्यारीन् दलय कलय प्राणिषु दयाम्,
तदादेच्यत्सङ्घं भयहरजिनेन्द्रोक्तवचनैः ॥२०९॥
नसीरावादात्सः विजयगरे शास्त्रनिपुणः,
समायाद्यत्रासन् मुनिवरयुताः पण्डितवराः ।
बुधाः देवीलालाः वृषजिनवृषादेशनपराः,
तदा तत्वं जैनं जिनमतगतांश्चेतरजनान् ॥२१०॥
दिशन्नेकं मासं स्थितिमकृतरम्यां मुनिवरो-
भिणायं तस्माच्च प्रमुदितमना धर्ममवृधत् ।

क्रमाज्जैनक्षेत्रे सततमुपदेशामृतजलैः
समारूढद्धर्मक्षितिरुहमुदग्रं फलयुतम् ॥२११॥

भावार्थ—जयपुर से किशनगढ़ होते हुए, आपने अजमेर श्री संघ के आग्रह से प्रेरित हो कर, अजर-अमर-पुरी अजमेर की भूमि को पावन किया। वहाँ पर आपने जन्म-मृत्यु के भय को निवारण करने वाली श्री जिनेन्द्रवाणी के अनुसार काम-क्रोधादि रिपुओं पर विजय प्राप्त करके प्राणी मात्र पर दया करने का उपदेश दिया ॥२०९॥ वहाँ से नसीराबाद होते हुए विजयनगर पधारे। वहाँ पर पण्डित-रत्न मुनि श्री देवीलाल जी म० अपने शिष्य-मण्डल सहित विराजमान थे। आपने भी यहाँ एक मास ठहर कर जैन तथा जैनेतरों को अपने व्याख्यानामृत से तृप्त किये। फिर वहाँ से भिणाय पधारे। और वहाँ की जनता को उपदेश प्रदान किया। यों जिन धर्म-क्षेत्र में जिन धर्म रूपी कल्पवृक्ष को उपदेश रूपी जल द्वारा सिंचित करके उसे फल से परिपूर्ण बनाया ॥२१०-२११॥

पश्चाद्वांधनवाडाञ्च रूपाहेलीञ्च लाम्बिकाम् ।
माण्डलां भीलवाडाञ्च समार्षीद्धर्मबोधकः ॥२१२॥
श्रुत्वा ज्वाहरलालस्य नन्दलालादिभिः सह ।
स्थितिं निम्बडाग्रामेऽयात्तदा गुरुमीक्षितुम् ॥२१३॥

भावार्थ—भिणाय से विहार करके आपने क्रमशः बान्दनवाड़ा

रूपाहेली, लाम्बिया, माँडल और भीलवाड़ा नामक क्षेत्रों को पावन किया ॥२१२॥ वहाँ आपको यह हर्ष समाचार प्राप्त हुए, कि " पूज्य श्री जवाहिरलाल जी म०, स्थविर-पद-विभूषित, शास्त्र-विशारद, पूज्य गुरुदेव मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज आदि मुनिवरों सहित निम्बाहेड़ा में विराजमान हैं।" इस शुभ समाचार को पाकर आप अपने पाँच शिष्यों सहित उनके दर्शनार्थ निम्बाहेड़ा की ओर पधारे ॥२१३॥

मुनीन्द्रसांसारिकपितृभक्त्या निम्बाहडासङ्घशुभाग्रहेण।
नभोश्वखण्डाचितसंमितेऽद्धे व्यातीचतुर्मासमुदग्रयोगी ।

भावार्थ—अपनी जन्म-भूमि निम्बाहेड़ा में पहुँच कर विक्रम सम्वत् १९७० का चातुर्मास आपने अपने सांसारिक पिता जी और श्री संघ के विशेष आग्रह से तथा गुरु जी की आज्ञा से प्रेरित हो कर, वहीं पर किया ॥२१४॥

चातुर्मासमबीभसज्जिनगिरा हित्वा च निम्बाहड़ाम्,
पर्याटीद्विविधस्थलेषु समयाच्छ्रीमन्दसौरे पुरे ।
तत्स्थाने मुनिसत्तमाः समभुवन् तत्वज्ञविद्याप्रभ,
श्रीमज्जवाहरलालजित्सुचरितः कल्याणकन्दाम्बुदः ॥२१५
चञ्चच्छारदचन्द्रचारुवदन श्रेयोविनिर्यद्वचो,
वादीन्द्रद्विपकेशरीशुचिमतिः श्रीनन्दलालोगुरुः ।
एवं सत्कविताप्रसूनसुरभिप्रीतोमुनीन्द्रस्तथा,

हीरालालकवीश्वरः प्रणयधीर्वैराग्यरङ्गान्वितः ॥२१६॥
रुग्णोज्वाहरलालजीप्रवयसाऽस्थालीच्च तत्र स्थले,
ऐतश्रीमुनिनन्दलाल इति यः शिष्यैर्गणैर्जावराम् ।
कोटां तोयधिमासमर्चनविधौ श्रीखूबचन्द्रोमुनिः,
प्रायात्स्वीयगुरुर्निदेशवचनैर्ज्याऽगाङ्कभूवत्सरे ॥२१७

भावार्थ—आपने संवत् १९७० का चातुर्मास निम्बाहेड़ा में व्यतीत करके गुरुवर्य श्री जवाहिरलालजी म० वादी-मान-मर्दक विद्वान् पं० मुनि श्री नंदलाल जी महाराज, और कविता,-कुसुम सौरभ द्वारा सुरभित कवि श्री हीरालालजी म० आदि मुनियों तथा अपने शिष्यों सहित विहार करते हुए मन्दसौर में पदार्पण किया। श्री जवाहिरलाल जी म० तो वृद्धावस्था के कारण मन्दसौर ही में ठहर गये। किंतु मुनि श्री नन्दलालजी म० अपने शिष्यों सहित जावरा पधारे। फिर कोटा संघ के अत्याग्रह से तथा गुरुजी की आज्ञा से प्रेरित होकर मुनि श्री खूबचन्दजी म० संवत् १९७१ का चातुर्मास करने के लिए कोटा पधारे ॥२१५-२१६-२१७॥

क्रोधादिरूपममितुं गुरुपादपद्मं,
जैनेतराः सुमनुजाः शुचिभक्तिभावैः ।
अस्ताविषुः समवनीत्कृपया मुनीन्द्रः,
कुर्वन्ति ये भुवि नृणां पतनं शृणुध्वम् ॥२१८
धैर्यं धुनोति विधुनोति मतिं क्षणेन,

रागं करोति शिथिलीकुरुते शरीरम् ।
धर्म हिनस्ति वचनं विदधात्यवाच्यं,
कोपोग्रहोरतिपतेर्मदिरामदश्च ॥२१९॥
भ्रूभङ्गभंगुरमुखोविकरालरूपो-
रक्तेक्षणोदशनपीडितदन्तवासाः ।
त्रासं गतोऽतिमनुजोजननिन्द्यवेषः,
क्रोधेन कम्पिततनुर्भुविराक्षसो वा ॥२२०॥
वैरं विवर्धयति सख्यमपाकरोति,
रूपं विरूपयति निन्द्यमतिं तनोति ।
दौर्भाग्यमानयति शातयतेचकीर्तिं,
रोषोऽत्र रोषसदृशो नहि शत्रुरस्ति ॥२२१॥
वित्ताशया खनति भूमितलं सतृष्णो-
धातून्गिरेर्धमति धावति भूमिपाग्रे ।
देशान्तराणि विविधानि विगाहते च,
पुण्यं विना न च नरो लभते स तृप्तिम् ॥२२२
वर्धस्व जीव जय नन्द विभो ! चिरं,
त्वमित्यादिचाटुवचनानि विभाषमाणः।
दीनाननो मलिननिन्दितरूपधारी,
लोभाकुलो वितनुते सधनस्य सेवाम् ॥२२३॥
जीवान्निहन्ति विविधं वितथं ब्रवीति,

स्तेयं तनोति भजते वनितां परस्य ।
गृह्णाति दुःखजननं धनमुग्रदोषं,
लोभग्रहस्य वशवर्तितया मनुष्यः ॥२२४॥
निःशेषलोकवनदाहविधौ समर्थं,
लोभानलं निखिलतापकरं ज्वलन्तम् ।
ज्ञानाम्बुवाहजनितेन विवेकजीवाः,
सन्तोषदिव्यसलिलेन शमं नयन्ते ॥२२५॥
यां छेदभेददमनाङ्कनदाहदोह-
वातातपान्नजलरोधवधादिदोषाम्,
मायावशेनमनुजोजननिन्दनीयां,
तिर्यग्गतिं व्रजति तामतिदुःखरूपाम् ॥२२६॥
यत्र प्रियाप्रियवियोगसमागमान्य-
प्रेष्यत्वधान्यधनबान्धवहीनताद्यैः ।
दुःखं प्रयाति विविधं मनसाप्यसह्यं,
तं मर्त्यवासमधितिष्ठति माययाङ्गी ॥२२७॥
कोपादिकान् रिपुगणान्गुरुबोधशस्त्रै-
र्धर्माभिमर्दसुपटे विनिहत्यमर्त्यः ।
ज्ञानप्लवेन तरतीह भवार्णवं सः,
वीरप्रभूक्तपरमं पदमालिनाति ॥२२८

भावार्थ—क्रोधादि कषायों के निवारणार्थ जैन तथा जैनेतर जनता ने, मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० से उपदेश प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। तब मुनि श्री ने मनुष्यों को अधोगति में ले जाने वाले क्रोधादि कषायों का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया ॥२१८॥ क्रोध धैर्य को नष्ट कर डालता है। क्षण-भर में बुद्धिको बिगाड़ देता है। अपने आपे को भुला देता है। शरीर को शिथिल कर देता है। धर्म को ध्वंस कर देता है। क्रोध में वाच्य और अवाच्य का विचार नहीं रहता, क्रोध एक प्रकार की मदिरा का मद है ॥२१२॥ क्रोधी मनुष्य की भृकुटि सदैव चढ़ी रहती है। मुखाकृति भयंकर स्वरूप धारण कर लेती है। नेत्र लाल-लाल हो जाते हैं। वह अपने प्रकम्पित शरीर द्वारा दाँत पीसता हुआ लोकनिन्दा का पात्र बनता है। इस प्रकार क्रोधी मनुष्य एक राक्षस के समान त्रासदायक मालूम पड़ने लगता है ॥२२०॥ क्रोध, मैत्रीभावना को नष्ट-भ्रष्ट करके वैर-भावना को उत्पन्न करने वाला तथा घृणित विचारों का प्रचारक है। क्रोध, मनुष्य को कष्ट में डाल कर उसके वास्तविक स्वरूप को विकृत कर डालता है। तथा कीर्ति को भी नष्ट कर डालता है। क्रोध के समान इस संसार में दूसरा कोई शत्रु नहीं है ॥२२१॥ लोभ के वशीभूत होकर धन की आशा से प्राणी भूमि को खोदते हैं। पर्वत की धातुओं को फूँकते हैं। राजाओं के आगे दौड़ते हैं। अनेक देशों की ख़ाक छानते फिरते हैं। किंतु उन्हें पुण्य के बिना, कहीं पर भी सन्तोष

प्राप्त नहीं होता है ॥२२२॥ लोभी पुरुष के लक्षण यह हैं, कि वे व्याकुल जीव निन्दित वेष को धारण करके धनिक पुरुषों की सेवा में रहते हैं। और दीनता पूर्वक उनकी चापलूसी करते हैं, कि हे स्वामिन ! आप सद् बुद्धि को प्राप्त हों। आप चिरकाल तक जीवित रहें और आनन्द को प्राप्त हों। इत्यादि ॥२२३॥ लोभ के आधीन होकर, यह प्राणी अनेक प्रकार के जीवों का घात करता है। असत्य-भाषण, चोरी, और पर-स्त्री-सेवन करता है। तथा प्राणनाशक दुःख के उत्पन्न करने वाले धन को ग्रहण करता है ॥२२४॥ विचारशील पुरुष इस लोभ रूपी अग्नि को, जो कि सम्पूर्ण लोक रूपी वन को दग्ध करने में समर्थ है। तथा जो सब को जला देने वाली है, अपने ज्ञान रूपी बादल द्वारा संतोष रूपी दिव्य जल की वर्षा से बुझाते हैं ॥२२५॥ माया के, आधीन होकर यह जीव छेदन, भेदन, अंकन दाहन, वात, धूप और अन्नाभाव आदि अनेक कष्टों की प्रदान करने वाली पशु गति को प्राप्त करता है ॥ २२६ ॥ माया के कारण मर्त्य लोक में भी प्रिय-वियोग, अप्रिय-संयोग तृष्णा तथा धन-धान्य का अभाव आदि अनेक असह्य दुःख प्राप्त होते हैं ॥ २२७ ॥ जो मनुष्य गुरू बोध रूपी अस्त्र-शस्त्रों द्वारा सुसज्जित होकर धर्म रूपी रण-क्षेत्र में क्रोधादि शत्रुओं को पराजित करके ज्ञान रूपी नौका से संसार रूपी समुद्र को पार करते हैं। वे ही मनुष्य वीर प्रभु द्वारा भाषित परम पद मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥२२८॥

भावार्थ—क्रोधादि कषायों के निवारणार्थ जैन तथा जैनेतर जनता ने, मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० से उपदेश प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। तब मुनि श्री ने मनुष्यों को अधोगति में ले जाने वाले क्रोधादि कषायों का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया ॥२१८॥ क्रोध धैर्य को नष्ट कर डालता है। क्षण-भर में बुद्धिको बिगाड़ देता है। अपने आपे को भुला देता है। शरीर को शिथिल कर देता है। धर्म को ध्वंस कर देता है। क्रोध में वाच्य और अवाच्य का विचार नहीं रहता, क्रोध एक प्रकार की मदिरा का मद है ॥२१९॥ क्रोधी मनुष्य की भृकुटि सदैव चढ़ी रहती है। मुखाकृति भयंकर स्वरूप धारण कर लेती है। नेत्र लाल-लाल हो जाते हैं। वह अपने प्रकम्पित शरीर द्वारा दाँत पीसता हुआ लोकनिन्दा का पात्र बनता है। इस प्रकार क्रोधी मनुष्य एक राक्षस के समान त्रासदायक मालूम पड़ने लगता है ॥२२०॥ क्रोध, मैत्रीभावना को नष्ट-भष्ट करके वैर-भावना को उत्पन्न करने वाला तथा घृणित विचारों का प्रचारक है। क्रोध, मनुष्य को कष्ट में डाल कर उसके वास्तविक स्वरूप को विकृत कर डालता है। तथा कीर्ति को भी नष्ट कर डालता है। क्रोध के समान इस संसार में दूसरा कोई शत्रु नहीं है ॥२२१॥ लोभ के वशीभूत होकर धन की आशा से प्राणी भूमि को खोदते हैं। पर्वत की धातुओं को फूँकते हैं। राजाओं के आगे दौड़ते हैं। अनेक देशों की ख़ाक छानते फिरते हैं। किंतु उन्हें पुण्य के बिना, कहीं पर भी सन्तोष

प्राप्त नहीं होता है ॥२२२॥ लोभी पुरुष के लक्षण यह हैं, कि वे व्याकुल जीव निन्दित वेष को धारण करके धनिक पुरुषों की सेवा में रहते हैं। और दीनता पूर्वक उनकी चापलूसी करते हैं, कि हे स्वामिन ! आप सद् बुद्धि को प्राप्त हों। आप चिरकाल तक जीवित रहें और आनन्द को प्राप्त हों। इत्यादि ॥२२३॥ लोभ के आधीन होकर, यह प्राणी अनेक प्रकार के जीवों का घात करता है। असत्य-भाषण, चोरी, और पर-स्त्री-सेवन करता है। तथा प्राणनाशक दुःख के उत्पन्न करने वाले धन को ग्रहण करता है ॥२२४॥ विचारशील पुरुष इस लोभ रूपी अग्नि को, जो कि सम्पूर्ण लोक रूपी वन को दग्ध करने में समर्थ है। तथा जो सब को जला देने वाली है, अपने ज्ञान रूपी बादल द्वारा संतोष रूपी दिव्य जल की वर्षा से बुझाते हैं ॥२२५॥ माया के, आधीन होकर यह जीव छेदन, भेदन, अंकन दाहन, वात, धूप और अन्नाभाव आदि अनेक कष्टों को प्रदान करने वाली पशु गति को प्राप्त करता है ॥ २२६ ॥ माया के कारण मर्त्य लोक में भी प्रिय-वियोग, अप्रिय-संयोग तृष्णा तथा धन-धान्य का अभाव आदि अनेक असह्य दुःख प्राप्त होते हैं ॥ २२७ ॥ जो मनुष्य गुरु बोध रूपी अस्त्र-शस्त्रों द्वारा सुसज्जित होकर धर्म रूपी रण-क्षेत्र में क्रोधादि शत्रुओं को पराजित करके ज्ञान रूपी नौका से संसार रूपी समुद्र को पार करते हैं। वे ही मनुष्य वीर प्रभु द्वारा भाषित परम पद मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥२२८॥

भावार्थ—क्रोधादि कषायों के निवारणार्थ जैन तथा जैनेतर जनता ने, मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० से उपदेश प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। तब मुनि श्री ने मनुष्यों को अधोगति में ले जाने वाले क्रोधादि कषायों का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया ॥२१८॥ क्रोध धैर्य को नष्ट कर डालता है। क्षण-भर में बुद्धिको विगाड़ देता है। अपने आपे को भुला देता है। शरीर को शिथिल कर देता है। धर्म को ध्वंस कर देता है। क्रोध में वाच्य और अवाच्य का विचार नहीं रहता, क्रोध एक प्रकार की मदिरा का मद है ॥२१२॥ क्रोधी मनुष्य की भृकुटि सदैव चढ़ी रहती है। मुखाकृति भयंकर स्वरूप धारण कर लेती है। नेत्र लाल-लाल हो जाते हैं। वह अपने प्रकम्पित शरीर द्वारा दाँत पीसता हुआ लोकनिन्दा का पात्र बनता है। इस प्रकार क्रोधी मनुष्य एक राक्षस के समान त्रासदायक मालूम पड़ने लगता है ॥२२०॥ क्रोध, मैत्री-भावना को नष्ट-भष्ट करके वैर-भावना को उत्पन्न करने वाला तथा घृणित विचारों का प्रचारक है। क्रोध, मनुष्य को कष्ट में डाल कर उसके वास्तविक स्वरूप को विकृत कर डालता है। तथा कीर्ति को भी नष्ट कर डालता है। क्रोध के समान इस संसार में दूसरा कोई शत्रु नहीं है ॥२२१॥ लोभ के वशीभूत होकर धन की आशा से प्राणी भूमि को खोदते हैं। पर्वत की धातुओं को फूँकते हैं। राजाओं के आगे दौड़ते हैं। अनेक देशों की ख़ाक छानते फिरते हैं। किंतु उन्हें पुण्य के विना, कहीं पर भी सन्तोष

मांसाशने मोदति मांसभक्षी जानाति नो कर्मविचित्रभावम्
अश्नाम्यहं प्राणिनमद्यमोदैः कालान्तरेऽशिष्यति जीवमांसः

भावार्थ--जो जीव माँस-भक्षण करने में आनन्द मानते हैं। वे महान् पाप सम्पादन करते हैं! और अन्त में नरक गति में जाकर अनन्त दुःखों को प्राप्त करते हैं। ऐसा समझ कर माँस का भक्षण कभी नहीं करना चाहिए॥२३३॥ माँस-भक्षियों के हृदयों में तनिक भी दया-भाव उत्पन्न नहीं होता है। और दया के बिना पुण्य की प्राप्ति नहीं होती। पुण्य के बिना यह जीव इस संसार रूपी भीषण वन में भ्रमण करता हुआ भयानक दुःखों का शिकार होता है। माँस-भक्षी जीव, माँस-भक्षण के समय महान् आनन्द मानता है। किन्तु कर्म की विचित्र गति को वह नहीं जानता है, कि आज मैं जिन को आनन्द पूर्वक भक्षण कर रहा हूँ। कालान्तर में वेही मुझ को भक्षण करेंगे। माँस शब्द का व्युत्पत्यर्थ है 'माँ' अर्थात् 'मुझ को' और 'स' अर्थात् 'वह'। तात्पर्य इसका यह है, कि जिस प्राणी के माँस को आज मैं खा रहा हूँ, कालान्तर में वही प्राणी मुझ को भी खावेगा॥२३४॥

यानी कानिचिदनर्थवीचिके, जन्मसागरजले निमज्जताम्।
सन्ति दुःखनिलयानि देहिनां, तानि चाक्षरमणेन निश्चितम्
सत्यशौचशमशर्मवर्जिता, धर्मकामधनतोबहिष्कृताः।

निपतितो वदते धरणीतले, वमति सर्वजनेन विनिन्द्यते ।
श्वशिशुभिर्वदनं परिचुम्ब्यते, वतसुरासुरतस्य विमूत्र्यते ॥
भवति मद्यवशेन मनोभवः, सकलदोषकरोऽत्र शरीरिणः ।
भजति तेन विकारमनेकधा, गुणयुतेन सुरा परित्यज्यते
पिवति यो मदिरा मथलोलुपः श्रयति दुर्गतिदुःखमसौजनः
इति विचिन्त्य महामतयास्त्रिधा परिहरन्ति सदा मदिरारसम्

भावार्थ—मदिरा पीने वाला मनुष्य, पृथ्वी पर गिर कर. अंट-संट बकवाद करता हुआ वमन करता है। अतः जगत्-जनता द्वारा वह निंदा का पात्र होता है। कुत्ते उसके मुख को चाटते हैं। और अपने अपवित्र मूत्र द्वारा उसको प्रक्षालित करते हैं ॥२२६॥ मदिरा-पान से कामदेव की उत्पत्ति होती है। और शरीर-धारियों के लिए यह कामदेव सब प्रकार के दोषों की जड़ है। क्योंकि इसी से शरीर में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। गुणवान् मनुष्य, मदिरा-पान को त्याज्य समझते हैं ॥२३०॥ जो मनुष्य मद्य पीते हैं, वे दुर्गति के महान् भयंकर दुखों के अधिकारी होते हैं। इसलिए विचारशील व्यक्ति मदिरा को कभी नहीं पीते हैं ॥२३१॥

मांसाशनाज्जीववधानुमोदस्ततो भवेत्पापमनन्तमुग्रम् ।
ततोव्रजेद् गतिमुग्रदोषां मत्वेति मांसं परिवर्जनीयम् ॥२३२
मांसाशिनो नास्तिदयासुभाजांदयां विनानास्तिजनस्य पुण्यम्
पुण्यं विना याति दुरन्तदुःखं संसारकान्तारमलभ्य पारम्

मांसाशने मोदति मांसभक्षी जानाति नो कर्मविचित्रभावम्
अश्नाम्यहं प्राणिनमद्यमोदैः कालान्तरेऽशिष्यति जीवमांसः

भावार्थ--जो जीव माँस-भक्षण करने में आनन्द मानते हैं। वे महान् पाप सम्पादन करते हैं! और अन्त में नरक गति में जाकर अनन्त दुःखों को प्राप्त करते हैं। ऐसा समझ कर माँस का भक्षण कभी नहीं करना चाहिए।।२३३।। माँस-भक्षियों के हृदयों में तनिक भी दया-भाव उत्पन्न नहीं होता है। और दया के बिना पुण्य की प्राप्ति नहीं होती। पुण्य के बिना यह जीव इस संसार रूपी भीषण वन में भ्रमण करता हुआ भयानक दुःखों का शिकार होता है। माँस-भक्षी जीव, माँस-भक्षण के समय महान् आनन्द मानता है। किन्तु कर्म की विचित्र गति को वह नहीं जानता है, कि आज मैं जिन को आनन्द पूर्वक भक्षण कर रहा हूँ। कालान्तर में वेही मुझ को भक्षण करेंगे। माँस शब्द का व्युत्पत्यर्थ है 'माँ' अर्थात् 'मुझ को' और 'स' अर्थात 'वह'। तात्पर्य इसका यह है, कि जिस प्राणी के माँस को आज मैं खा रहा हूँ, कालान्तर में वही प्राणी मुझ को भी खावेगा।।२३४।।

यानी कानिचिदनर्थवीचिके, जन्मसागरजले निमज्जताम्।
सन्ति दुःखनिलयानि देहिनां,तानि चाक्षरमणेन निश्चितम्
सत्यशौचशमशर्मवर्जिता, धर्मकामधनतोबहिष्कृताः।

द्यूतदोषमतिनापि चेतनाः कं न दोषमुपचिन्वते जनाः॥२३६

साधुबन्धुपितृमातृसज्जनान्मन्यते न तनुते मलंकुले ।
द्यूतरोपितमना निरस्तधीःशुभवासमुपयात्यसौ यतः ॥२३७॥

द्यूतनाशितसमस्त भूतिको, बम्भ्रमीति सकलां भुवंनरः ।
जीर्णवस्त्रकृतदेहसंहतिर्मस्तकाहितकरः क्षुधातुरः ॥२३८॥

याचते पटति याति दीनतां,लज्जते न कुरुते विडम्बनाम् ।
सेवते नमति याति दासतां,द्यूतसेवनपरोनरोऽधमः ॥२३९॥

शीलवृत्तगुणधर्मरक्षणं, स्वर्गमोक्षसुखदानपेशलम् ।
दुर्वेताक्षरमणं न तत्वतः सेव्यते सकलदोषकारणम् ॥२४०॥

भावार्थ—अनर्थरूपी लहरों से व्याप्त, संसार समुद्र के जल में डूबते हुए प्राणियों को जो भी दुःख प्राप्त होते हैं। वे सब जुआ खेलने से मिलते हैं। यह ध्रुव सत्य है ॥२३५॥ जुआरियों को सज्जन, बन्धु, माता, पिता, आदि किसी भी व्यक्ति को प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं रहता है। वे अपने उज्वल वंश पर कलंक का टीका चढ़ाते हैं। उनको सत्यता, पवित्रता, शान्ति और सुख प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। द्यूत-क्रीड़ा-जनित, दूषित बुद्धि के कारण, उनका धन,धर्म और बुद्धि विलुप्त हो जाती है। इस प्रकार सुध-बुध-विहीन होकर जुआरी लोग किस दोष को प्राप्त नहीं करते हैं ? अर्थात सब ही प्रकार के दोष उनके हृदय में निवास कर लेते हैं। और अन्त में वे बुद्धि रहित नरक गति को प्राप्त करके

दुःख भोगते रहते हैं ॥२३६-२३७॥ जुआरी लोग जुआ में अपनी समस्त सम्पत्ति नष्ट करके संसार में दर-दर के भिखारी होकर इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। फिर वे बुभुक्षित, फटे वस्त्र धारण करते हुए, सिर पर हाथ धर कर, रोते और पछताते हैं ॥२३८॥ जुआरी पुरुष नीचवृत्ति द्वारा उदर-पूर्ति करते हैं। अर्थात् वे नीच व्यक्तियों की सेवा करते हैं, उनके हाथ जोड़ते हैं, उनके साथ-साथ फिर कर उनसे भीख माँगते हैं। और यहाँ तक, कि वे दास-वृत्ति को भी धारण कर लेते हैं। इस प्रकार उनके हृदय से लज्जा पलायन हो जाती है। और वे महान् विडम्बना को प्राप्त होते हैं ॥२३६॥ शील-व्रत, गुण और धर्म आदि जो कि स्वर्ग और मोक्ष आदि अखण्ड सुख के देने वाले हैं। उनकी रक्षा के लिए पुरुष को सकल दोष के मूल कारण जुआ का सदा सर्वदा के लिए परित्याग कर देना चाहिए ॥२४०॥

द्यूतेन नलः कौरवपाण्डवाश्च, परस्त्रिया रावण उग्रभोगी।
मद्येन सर्वे यदुवंशजाताः याताः क्षयं वकनृपश्च मांसैः ॥
गुरूपदेशामृतासक्तचित्ताः द्यूतं सुरामामिषभक्षणञ्च।
संतत्यजुश्चैव तमाखुपत्रमप्यन्त्यजाःपालकनापिताश्च॥२४२

भावार्थ— द्यूतक्रीड़ा के कारण महाराजा नल तथा कौरव-पाण्डव जैसे प्रख्यात शक्तिशाली यदुवंशियों को भी कष्ट उठाना पड़ा। पर-स्त्री-गमन से रावण जैसा प्रतापी राजा भी सर्वनाश को प्राप्त हुआ। मद्य-पान के कारण समस्त यदुवंशी विनाश को प्राप्त

हुए। और माँस-भक्षण करने से राजा वंक नरक गति में उत्पन्न हुआ ॥२४१॥ इस प्रकार गुरु श्री खूबचन्द जी म० के उपदेशामृत द्वारा सिंचित गडरिये, नाई आदि मनुष्यों ने द्यूत क्रीड़ा, मदिरा पान, माँस भक्षण और तम्बाखू सेवन आदि दुर्व्यसनों का सदा-सर्वदा के लिए परित्याग कर दिया ॥२४२॥

चातुर्मासमहोत्सवं सुमनसाऽधीतयापि यज्जावरां,
तत्स्थानाद्गुरुपादशिष्टिवशगः पातुञ्चतुर्मासिकम् ।
ऐङ्खीत्सोऽप्यजमेरमार्षचरितोऽब्दे विक्रमीये शुभे,
नेत्राश्वाङ्कवसुन्धरापरिमिते मासे शुचौ कष्टतः ॥२४३॥

भावार्थ—इस प्रकार आप कोटे का चातुर्मास समाप्त करके जावरा पधारे। और फिर अपने पूजनीय गुरुवर्य श्री जी की आज्ञानुसार आप ग्रीष्म कालीन भीषण आतप को सहन करते हुए वि. संवत् १९७२ के चातुर्मासार्थ अजमेर में पहुँच गये ॥२४३॥

आसेविष्टगुलाबचन्द्रमनिशं रोगान्वितं सद्यतिम्—
सर्वैः शिष्यगणैस्ततः समपिदत्स्वास्थ्यं गुलाबोमुनिः ।
ऊर्जे दीपकमालिकासुदिवसे भीष्मामयैः पीडितः,
श्रीमज्जवाहरलालजीमुनिवरोऽधत्तोपवासं व्रतम् ॥२४४॥
श्रीस्थानाङ्गसुसूत्रदीप्तकथिते श्रीपञ्चमीये स्थले,
उद्देशद्वितयानुगो मुनिवरो हित्वाऽजमेरं पुरम्,

प्रायाच्छ्रीगुरुदर्शनाय तदपि स्वर्गं गुरुः प्रागमत्,
षष्ठ्यां कार्तिकमासिके सिततिथौ शुक्रे च मध्याह्निके ॥२४५

भावार्थ—अजमेर चातुर्मास के लिए विहार करते समय, आपने अपने शिष्य-मण्डल सहित रुग्ण-शय्या-शायी मुनि श्री गुलाबचन्द जी महाराज को औषधोपचार द्वारा स्वास्थ्य-लाभ प्रदान किया। इसी वर्ष चातुर्मास में मुनि श्री जवाहिरलालजी म. का स्वास्थ्य मन्दसौर में अत्यन्त खराब हो गया। अतः उन्होंने दीपमालिका के दिन संथारा ( अनशन व्रत ) धारण कर लिया। इस समाचार को पाकर, हमारे चरित्रनायक धैर्यवान् मुनि श्री खूब-चन्द्रजी म० ने, चातुर्मास में ही श्री स्थानाङ्ग सूत्र के पाँचवे स्थान के द्वितीय उद्देशानुसार, गुरुवर्य श्री जी के दर्शनार्थ, मन्दसौर की तरफ़ प्रस्थान कर दिया। परन्तु गुरुवर्य श्री जवाहिरलालजीम. का देहावसान तो कार्तिक शुक्ला ६ शुक्रवार के दिन ही हो चुका था।

स्वर्गावासमसमाचारं निजगुरोः श्रीभीलवाडापुरे,
श्रुत्वोवासदिनानि खेदसहितः प्रायात्तु चित्तोडकम् ।
तस्माच्छ्रीयुतदेविलालमुनिना कृत्वा विहरं पुनः,
संप्राप्योदयकं पुरश्च मुनिना प्रायात्पुनः ब्यावरम् ॥२४६

भावार्थ—गुरुवर्य श्री जी के स्वर्गवास के समाचार हमारे चरित्रनायक जी को मार्ग में अर्थात् भीलवाड़ा में ही प्राप्त हो गये। तब आपने खेद पूर्वक प्रकट किया. कि देखो मैं गुरुदेव की

अन्तिम सेवा भी सम्पादन नहीं कर सका। आप कुछ दिन भीलवाड़ा में ही ठहरे। और फिर कुछ ही दिनों के पश्चात चित्तौड़गढ़ की तर्फ विहार किया। फिर वहाँ से पंडित मुनि श्री देवीलालजी म० के साथ ही साथ उदयपुर नगर की भूमि को पावन करते हुए, आपने ब्यावर नगर में पदार्पण किया ॥२४६॥

नेत्राश्वाङ्क महीमिते मुनिवराः श्रीनन्दलालादयः,
पुण्ये जोधपुरे तदा समभवन् सप्तोत्तराविंशतिः।
धन्वस्थोगुणघोटकाङ्कक्षमिते वर्षादिनानाङ्कृते,
प्रार्थ्ये शुभसादडीजनवहः श्रीनन्दलालं ययौ ॥२४७॥
वैहृद्यं विततं तदा समभवत् संस्थानके वासिनाम्,
जैननानां जिनमन्दिरं सुमहतां येनावरोधः पथि।
साधूनां गमनं तदा न सहसा कष्टं समीक्ष्याजनि,
वैसंवादयुतेऽपि तत्र समये श्रीखूबचन्द्रं मुनिम् ॥२४८॥
नेतुं मासचतुष्टयं गुरुवरः पिप्रेय शान्तेः निधिम,
त्यक्त्वा तं मुनिपं यतो नहिपरः साधुस्तदा सोऽभवत्।
यद्वर्षा समयस्य निर्णयपरोदेशो न वाजायत,
मूर्धन्यादिशमयं निधाय सुगुरोः संशिश्रिये सादडीम् ॥२४९॥
व्याख्यानं जनशान्ति धायकभरं कृत्वा मुनिर्योगिराट्,
मुद्रां चेतसि संददे रसजुषां शान्त्याः गुणानां नृणाम्।



श्रद्धां संप्रदधे जनाः उभयतः संवेगिनः स्थानकाः,
व्याख्याने समुपाययुश्च मनुजाः वैरेण दूरीकृताः॥२५०॥

भावार्थ—व्यावर से प्रस्थान करके हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंद्रजी म० सोजत और पाली में धर्मोद्योत करते हुए जोधपुर पधारे। जोधपुर में आप पंडित मुनि श्री नन्दलालजी म० पंडित मुनि श्री हीरालालजी म०, पं० मुनि श्री देवीलालजी म० और प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी म० आदि मुनिवरों के साथ आऊवा वाले ठाकुर साहब की हवेली में विराजमान् हुए। उस समय वहाँ पर आपकी सेवा में सादड़ी (मारवाड़) का जैन श्री संघ अपने यहाँ चातुर्मास करने की प्रार्थना लेकर उपस्थित हुआ। क्योंकि उस समय केवल हमारे चरित्रनायकजी को छोड़ कर शेष सभी मुनियों का चातुर्मास यत्र-तत्र स्वीकृत हो चुका था। उन दिनों सादड़ी (मारवाड़) में स्थानकवासी और मन्दिर-मार्गी (मूर्तिपूजक) समाज में परस्पर वैमनस्य फैल रहा था। यहाँ तक, कि निर्ग्रंथ स्थानकवासी मुनि महाराज एवं महासतियों का उस क्षेत्र में गमन तक भी अवरुद्ध एवं कष्टप्रद हो रहा था। अतः सादड़ी (मारवाड़) के श्री संघ ने गुरुवर्य श्री के समक्ष अपने क्षेत्र की सारी परिस्थिति बतला कर, अंत में यह निवेदन किया, कि यदि इस वर्ष सादड़ी में मुनिराजों का चातुर्मास नहीं होगा, तो संभवतः तीन सौ घर स्थानकवासियों के जो वहाँ है, उनमें से चालीस-पचास घरों को छोड़ कर शेष सभी घर मूर्तिपूजक

बन जायेंगे, आदि-आदि । सादड़ी संघ के इस कथन को सुन कर, गुरुवर्य श्री नन्दलालजी म० ने क्षेत्र तथा धर्म की रक्षा के लिए अपने सुयोग्य शिष्य, हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंद्रजी म० को इस उपद्रव की शान्ति के लिए उपयुक्त समझ कर, जन-कल्याण की दृष्टि से, उनकी इच्छा गुरुजी की सेवा में रहने की होते हुए भी, उन्हें सादड़ी में चातुर्मास करने की आज्ञा प्रदान की । गुरुदेव की इस आज्ञा से प्रेरित होकर, आपने वि० सं० १९७३ का चातुर्मास सादड़ी (मारवाड़) में मनाया । सादड़ी के चातुर्मास में आपने अपने प्रति दिन के मनोहर एवं शांति प्रदायक धर्मोपदेश द्वारा, वहाँ की जैन-जैनेतर प्रजा में आशातीत शान्ति का संचार कर दिया । जिसके प्रभाव से श्वेताम्बर मंदिरमार्गी समाज के सज्जन भी आपके उपदेश में भाग लेने लगे । आपके उपदेशों द्वारा उन लोगों के हृदयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा । वे लोग बड़े ही आकर्षित हुए और श्रद्धालु बन कर आपकी भक्ति करने लगे। आपने वहाँ के पारस्परिक विद्वेष को ध्वंस करके चतुर्थ कालीन भाव के दृश्य को साक्षात् करके दिखा दिया । इस प्रकार शाँति स्थापित करते हुए आपने वहाँ का चातुर्मास सानन्द समाप्त किया । फिर आप अनेक ग्रामों में अपने धर्मोपदेश द्वारा जनता को सन्मार्ग पर लगाते हुए ब्यावर पधारे ॥२४७–२५०॥

तदा श्रीलालस्य जरठवयसिस्थाः मुनिवराः,
स्थिताः स्थानाधिस्थाः मुनिमनुजपूज्याः समुनयः ।

विनेयास्तं नेतुं परमपरमित्वा मुनिनृपम,
परावृत्ता ज्ञात्वा परममपरं खूबशशिनम् ॥२५१॥
ततो यात्वा भाई कनकमलजीमातृवचनात्,
समातस्थुः स्थाने व्रतचरमुनिः शान्तिमहितः।
ततः सत्यादानः कनकमलजी श्रेष्टिसहितो-
गुलेछोचेवाक्यं मुनिषु महितं शान्तिसहितम् ॥२५२॥
ग्रहीत्वा कस्येयं गृहवसतिरादेशमधुना,
ग्रहीतेति पृष्टोः कथयति मुनिः शान्तिसहितः।
समस्थामागारे कनकमलजीमातृवचनात्,
ततस्तद्वाक्यं सः पुनरपि निशम्येति सुमुनेः ॥२५३॥
ययौ तूष्णीं भावं तदपि हृदये तस्य गमनम्,
समाकाङ्क्षन्प्रायात् कनकमलजीवाक्यवशगः।
पुनर्मध्याह्ने स कनकमलजी श्रेष्टिपुवरः,
सुपन्नालालीयं सपदि सदनं प्राप मुनिपम्॥२५४॥
तदायात्पूज्यश्रीविनयशशिगच्छीयसुजनो-
महात्मा तत्र श्रीबुधमणिमुनिश्चन्दनमलः।
तदादिष्टं तस्यास्यमुनिमहितस्यैकफलके,
महाप्रेम्णा जातं हितकरं धर्ममहितम् ॥२५५॥

भावार्थ—उस समय ब्यावर में पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज की सम्प्रदाय के कुछ मुनि स्थिर-वास के रूप में विराजमान थे।

जब चरित्रनायकजी ने नगर में पदार्पण किया, तो मार्ग में एक गली के रास्ते से पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के सन्त भी आपके सम्मुख स्वागतार्थ आए थे। क्योंकि उन्होंने यह समझा था, कि अपनी ही सम्प्रदाय के सन्तों का शुभागमन हुआ है। किंतु जब उन्होंने हमारे चरित्रनायक श्री खूबचंद्रजी महाराज को देखा,तो वे शीघ्र ही वापिस लौट गये। चरित्रनायकजी ने सुश्रावक श्री कनक-मलजी बोहरा के मकान में पदार्पण किया। और उनकी माताजी की आज्ञा प्राप्त करके वहीं पर निवास किया। उस दिन आपके व्रत का पारणा था। अतःआपने तो वहीं पर विश्राम किया। और आपके साथ वाले मुनि गोचरी के लिए गये। पीछे से श्रीमान् सतीदानजी गोलेछा और श्री कनकमलजी यह दोनो महाशय चरित्र-नायकजी की सेवा में उपस्थित हुए।* और निवेदन किया,कि आप

* दीक्षा—वृद्ध, शास्त्र-विशारद, पण्डित मुनि श्री नन्दलालजी म० आदि मुनिराजों के प्रति पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज को शास्त्रानुसार वन्दना करनी पड़ती थी। अतः पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज को यह कार्य अरुचिकर प्रतीत होता था। क्योंकि वे इनसे भिन्न रहना चाहते थे। इस मन्तव्य की सिद्धि के लिये, उन्हें उनके कुछ भक्त श्रावक, सहयोग प्रदान करते रहते थे। श्रीमान् सतीदानजी तथा श्री कनकमलजी भी उन्हीं के भक्त-श्रावकों में से थे। इसीलिये उन्होंने मुनि श्री खूबचन्द जी म० आदि मुनिराजों को अपने मकान में नहीं ठहरने दिये।

यहाँ किस की आज्ञा से ठहरे हैं । तब शांतमूर्ति श्री खूबचंद्रजी म० ने उत्तर दिया. कि—"हम श्री कनकमलजी की मातेश्वरीजी से आज्ञा प्राप्त करके यहाँ ठहरे हैं।" उस समय श्रीमान् सतीदानजी की यह इच्छा थी, कि इन को यहाँ से अभी हटा दिये जाँय। किन्तु कनकमलजी ने कहा, कि पारणा करके चले जाँयगे! थोड़ी देर के पश्चात् कनकमलजी फिर वहाँ आये। और मध्यान्ह के समय में ही सेठ पन्नालालजी काँकरिया की हवेली में पधारने की प्रार्थना करने लगे। तब हमारे चरित्रनायकजी शांतिपूर्वक वहाँ पधार गये। वहाँ पर पूज्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज के गच्छा-नुयायी, पंडित रत्न, श्री चन्दनमलजी महाराज पधारे। इस प्रकार मुनि श्री खूबचंद्रजी महाराज एवं पंडित रत्न श्री चन्दनमलजी महाराज इन दोनों मुनिवरों का व्याख्यान उस एक ही स्थान पर, प्रेम पूर्वक होता था ॥२५१–२५२–२५३–२५४–२५५॥

तत्र श्रीमुनिनन्दलालसहितोहीरादिलालोमुनि—
र्विद्वच्छेखरदेविलालसुमतिः श्रीचौथमल्लस्तथा ।
श्रीमन्तोमुनिराजकाः शुभपराः सप्तोत्तराविंशति,
तस्थुस्तत्रपरेऽपिदेशनपरा लालान्तपन्नागृहे ॥२५६॥
व्याख्यानं महतां बभूव जनता सन्तोषदं मोददम्,
पुण्यं तत्खलु काकरीयसदनं पुण्यापणं प्राजनि ।
चुन्नीलालमुकुन्दजीसुसहितः पन्नादिलालो धनी,
सेवां श्रीमुनिवृन्दकस्य विदधे श्रद्धाश्च भक्त्यायुतः

भावार्थ—तदनन्तर शास्त्र-विशारद पंडित मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज, कविवर श्री हीरालालजी म० पंडित मुनि श्री देवी-लालजी म० और प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज आदि सत्तावीस सन्तों का शुभागमन ब्यावर में हुआ। और वे सभी सन्त भी श्रीमान् सेठ पन्नालालजी काँकरिया के उसी भव्य-भवन में विराजमान् हुए *। व्याख्यान का बड़ा भारी आनन्द

---

* ब्यावर में इस समय, इतने मुनिराजों के एकत्रित होने का मुख्य कारण यह था, कि गत चतुर्मास के पूर्व जोधपुर में पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० की सम्प्रदाय के साधुओं का सम्मेलन, इस उद्देश्य से हुआ था, कि इस सम्प्रदाय में जो पारस्परिक मत-भेद उत्पन्न हो गया है। उसे मिटा कर सम्प्रदाय में एक आचार्य नियुक्त कर दिया जाय, अतः इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये जोधपुर के कतिपय मुख्य-मुख्य श्रावकों का एक डेपुटेशन सरदार शहर में विराजित, पूज्य श्री श्रीलाल जी म० की सेवा में उपस्थित हुआ था। डेपुटेशन के सदस्यों ने पूज्य श्री श्रीलाल जी म० से संघठन के विषय में बातचीत की। पूज्य श्री ने आशाजनक उत्तर भी प्रदान किया। तब डेपुटेशन ने जोधपुर आकर मुनि-सम्मेलन के समक्ष पूज्य श्री का आशाजनक सन्देश प्रकट किया। पूज्य श्री के इसी सम्य के आश्वासन के कारण ही ब्यावर में यह सन्त-समुदाय एकत्रित हुआ था। किन्तु भावी-प्रबलता के कारण पूज्य श्री श्रीलाल जी म० वहाँ पर भी नहीं पधार सके। तब बहुत कुछ विचार-परामर्श के पश्चात् ऐसा हुआ, कि ब्यावर श्री संघ ने जावरा-निवासी श्री मगनीरास जी रांका को जम्मू (काश्मीर) में विराजित मुनि श्री मुन्नालालजी महाराज की सेवा में भेजे। और श्रीमान् वकील

रहा। पाली निवासी श्रीमान् सेठ मुकुन्दचन्दजी बालिया, सेठ चुन्नीलालजी सोनी और सेठ पन्नालालजी काँकरिया आदि महानु-भावों ने मुनिवरों की खूब ही सेवा-भक्ति की ॥२५६-२५७॥

नेत्राश्वाङ्कमहीमिते शुभतमे माघे सिते पञ्चमी-
तिथ्यां सः मुनिसंघदेशनवशात् श्रीदेविलालादिभिः।
पञ्चाम्बु प्रस्थित्य नूतनपुरोमार्गेऽजमेरादिके,
व्याख्यानं विदधन् ययावलवरं श्रीखूबचन्द्रोमुनिः ॥
आग्रातः समुपाययौ मुनिवरं श्रीसंघकस्तत्र तम्,

---

गब्बूलाल जी चौधरी को दक्षिण में विराजित श्री जवाहिरलालजी महाराज के पास भेजे। दक्षिण से श्रीमान वकील गब्बूलालजी द्वारा मुनि श्री जवाहिरलालजी महाराज की तरफ से ब्यावर श्री संघ के पास सम्मति आई, कि मुनि श्री मुन्नालालजी महाराज को पूज्य-पद पर प्रतिष्ठित कर दिये जाँय। उधर जम्मू से भी जावरा-निवासी श्री मगनी-रामजी रांका द्वारा मुनि श्री मन्नालालजी म० की ओर से आचार्य-पद स्वीकार करने की सूचना प्राप्त हुई। तथापि दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी लोढा, राय बहादुर सेठ छगनमलजी रीयां वाले और श्री सेठ रतनलालजी सरावगी आदि महानुभावों ने पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज की सेवा में उपस्थित होकर सम्प का पूर्ण प्रयत्न किया। किन्तु उनके निष्फल हो जाने पर संवत् १९७२ की शुभ मिति माघ शुक्ला पंचमी ( बसन्त पंचमी ) के दिन श्री मुन्नालालजी महाराज को बड़े समारोह के साथ आचार्य-पद प्रदान कर देने का ध्रुव निश्चय किया गया।

चातुर्मासमहोत्सवाय बहुशः प्रार्थां दधौ साग्रहम् ।
वीक्ष्य प्रार्थनतां तदा बहुनृणां मेने चतुर्मासकम्,
तुर्याश्वङ्कमहीमितेऽलवरादाग्राञ्च प्रौङ्खीद्मी ॥२५६॥

भावार्थ—विक्रम संवत् १६७३ की माघ शुक्ला पंचमी के पश्चात्, सम्प्रदाय के समस्त मुनिवरों की आज्ञानुसार पंडित मुनि श्री देवीलालजी महाराज और चरित्रनायक श्री खूबचंद्रजी महाराज आदि मुनियों ने ब्यावर से पंजाब की तरफ प्रस्थान किया। मार्ग में अजमेर, किशनगढ़ और जयपुर आदि अनेक नगरों और ग्रामों में धर्म-प्रचार करते हुए आप अलवर में पधार गये। वहाँ पर आगरा का श्री संघ चातुर्मास की विनंती लेकर आपकी पावन सेवा में समुपस्थित हुआ। और अत्यन्त आग्रह पूर्वक निवेदन किया, कि "कृपालु मुनिवर ! आगरा में चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान कर हमें कृतार्थ कीजिएगा।" श्री चरित्रनायकजी आगरा संघ की इस आग्रह भारी प्रार्थना को नहीं टाल सकते थे। अतः चातुर्मास करने के लिए, आपने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। और तदनुसार आप अलवर से विहार करते हुए वि० सं० १६७४ का चातुर्मास मनाने के लिए आगरा शहर में पधार भी गये ॥२५८-२५६॥

तुर्याश्वाङ्कमहीमिते शुभतमे आग्रे चतुर्मासकम्,
नेतुं संप्रययौ तदा मुनियुतः संघाग्रहाद्योगिराट् ।

सूनाःपूर्ववदेव तत्र सुमतिः श्रीमान्यशोरावजी,
हिंसकारणकारुरोधधनिकः संवत्सरे पर्वणि ॥२६०॥

भावार्थ—वि० सं० १९६७ के चातुर्मास की भाँति अब की वार भी संवत्सरी-पर्व के दिन चरित्रनायकजी के सदुपदेश से, धर्म-प्रेमी श्रीमान् सेठ यशवन्तराय जी सा० के प्रशंसनीय प्रयत्न द्वारा लोहामण्डी और शहर आदि स्थानों के चार कत्ल-खाने बन्द रहे। यों यह चातुर्मास भी बड़े ही आनंद के साथ सम्पन्न हुआ ॥२६०॥

पंजाब में धर्म-प्रचार

वर्षायाः समयं समाप्य मुनिराडत्याग्रहात्पूर्णा-
माग्रायां कतिचिद्दिनानि वसनं कृत्वा तु दिल्लीं ययौ।
जम्मुं गन्तुमनाततोमुनिवरश्रीदेविलालेन सः,
कालिन्यास्तटगाननेकनगरान् शिदँश्च नाभां ययौ ॥२६१॥

भावार्थ—शहर आगरा का चातुर्मास समाप्त कर के, आप श्रावकों के अत्याग्रह से कुछ दिन लोहामण्डी (आगरा) में ठहर कर, फिर देहली पधारे। यहाँ से पंडित मुनि श्रीदेवीलालजी म० के साथ आपने जम्मू ( काश्मीर ) पधारने के लिए विहार किया। मार्ग में जमुना-पार के अनेक क्षेत्रों को तथा करनाल, अम्बाला और पटियाला को पावन करते हुए आप नाभा पधारे ॥२६१॥

विलायतीराममहानुभावं श्रीओसवालं लुधियानवासम् ।
संघाज्ञयासोत्सवदीक्षितं तं विधायनाभापुरीतः प्रतस्थे ॥
मालेरकोटे जिनधर्मतत्वं दिशन् प्रपेदे लुधियानपुर्याम् ।
तत्रात्मरामस्य गुरून्प्रपद्य एकत्र पट्टे दिशतिस्म धर्मम्॥२६३

भावार्थ—नाभा में आपके पास, लुधियाना निवासी श्री विलायतीराम जी नामक एक ओसवाल बन्धु ने दीक्षा स्वीकार की। नाभा श्री संघ ने दीक्षोत्सव बड़े ही समारोह के साथ मनाया। नाभा से प्रस्थान कर, आप मालेरकोटला होते हुए लुधियाना पधारे। वहाँ पंजाबी मुनि उपाध्याय श्री पं० आत्मारामजी म० के गुरु, दादागुरु और उनके गुरु विराजमान थे। उन मुनिराजों के साथ चरित्रनायकजी ने बड़ा ही प्रेम तथा वात्सल्यता का भाव प्रकट किया। और उन्हीं के निवास-स्थान में एक ही पट्टे पर बैठ कर व्याख्यान दिये।।२६२–२६३।।

ततः कपूरस्थलकं पवित्वा, जलन्धरं प्राप्यसतीं प्रवृद्धाम् ।
श्रीपार्वतीं चन्द्रमतीञ्च दृष्ट्वा सुधासरे पूज्यमुनिं प्रवृद्धम् ।
श्रीकाशिरामोदयचन्द्रकाभ्यां, ददर्शतं सोहनलालजीकम्,
प्रश्नोत्तराणि भवताञ्च तेषां, जातानि वात्सल्यप्रभावितानि

भावार्थ—लुधियाना से फगवाड़ा और कपूरथला होते हुए जालंधर पधारे। वहाँ भारत-विख्याता, विदूषी सतीजी श्री पार्वती जी महाराज और विदुषी सती श्री चन्दादेवीजी म० आदि सतियाँ विराजती थीं। उनके साथ भी आपकी यथायोग्य वात्सल्यता रही

जम्मू में आचार्य पदोत्सव

वैसाखमासे सितपक्षमध्ये, तिथौ दशम्यां कृतयोजनायाम् ।
आचार्यपट्टस्य महोत्सवस्य,दिङ्नागसंख्या मनुजाः बभूवु
काश्मीरपुंनायकतोऽपि तत्र, प्रापुर्जनाःस्वागतमत्र याताः।
प्रबन्धकार्यं बहुशंसनीयम् जम्मूजनानामभवत्समस्तम्।।२६९

भावार्थ—वैशाख शुक्ला १० के दिन, जम्मू नगर में पूज्य श्री मुन्नालालजी महाराज के 'आचार्य-पद-महोत्सव' की योजना की गई थी। 'आचार्य-पद-महोत्सव' के कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए, अन्य ग्रामों के भी हजारों बन्धुओं ने भाग लिया था। लग-भग आठ-दस हजार की विराट् मानव-मेदिनी के बीच आचार्य-पदारोहण का कार्यक्रम बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। जम्मू संघ का उत्साह प्रशंसनीय था। जम्मू ( काश्मीर ) नरेश की ओर से भी आगत बन्धुओं की सेवा-सुश्रूषा तथा स्वागतार्थ जो प्रबन्ध किया गया था, वह बड़ा ही सराहनीय था। इस 'आचार्य-पद-महोत्सव' का विशेष उल्लेख 'त्रि-मुनि-चरित्र' में किया गया है ।।२६८-२६९।।

श्रीसंघकश्चरितनायकमत्रवर्षा,
मासावरोधकरणाय चकार यत्नम् ।
पूज्याज्ञया शरमुनिग्रहचन्द्रमध्ये,
तस्थे तदा विदधता जिनधर्मवर्षाम् ।।२७०।।

वर्षावसानसमये मघवानगर्याम्,
मुन्नेन्दुबालशशिना प्रययौ महात्मा ।
तत्रागतालवरसंघनिवेदनेन,
वर्षाव्यतीतकरणाय ततः प्रपेदे ॥२७१॥

भावार्थ—जम्मू श्री संघ के विशेष आग्रह से, तथा पूज्य श्री की आज्ञा से प्रेरित होकर आपने संवत् १९७५ का चातुर्मास काश्मीर देशस्थ जम्मू नगर में ही किया। इस चातुर्मास में आपकी अमृतोपम वाणी से श्री संघ में तपस्या तथा धर्म-ध्यान का खूब ही उद्योत हुआ। चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् आचार्य श्री जी के साथ-साथ उनकी सेवा में रह कर, आप अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए, पुनः दिल्ली नगर में पधारे। और फिर अलवर श्री संघ का विशेष आग्रह देख कर पूज्य श्री की आज्ञा से चातुर्मास के लिए अलवर पधारे ॥२७०-२७१॥

अलवरपुरमध्ये योगनिष्ठोमुनीन्द्रः
रसमुनिनिधिभूमिवत्सरे विक्रमीये ।
समनयतसुजैनोक्त्या गिराहर्षचेता,
विविधसदुपदेशैस्तच्चतुर्मासिकञ्च ॥२७२॥
मुनिवरपथगामीश्रीमयाचन्द्रयोगी
तप ऋतुमतपथस्तप्ततो येन मासम् ।
अभिहितसुतपोऽन्ते सङ्घशुभ्रोद्यमेन,

नयविनयविवेकोद्यानपुंस्कोकिलो यः ।
सुजनकमलभानुर्दुष्टकक्षे कृशानुः,
यरिव्रढदृढभक्तीरेखचन्द्रोगुणीन्द्रः ॥२७४॥
ललितभुवनमध्ये तस्य योगीन्यवात्सीन्,
जिनपतिवचनार्कैः प्रापुफुलन्नयाब्जम् ।
अजिनजिनमनुष्याः प्राप्सतप्रेमभावैः,
प्रणिहितजिनधर्मं कर्मनिर्मूलनाय ॥२७५॥

भावार्थ—वि० सं० १६७७ का चातुर्मास आपने जयपुर में किया। वहाँ पर भक्त-शिरोमणि, आगरा निवासी श्रीमान् सेठ रेखचन्द्रजी के सुपुत्र श्री फूलचन्द्रजी की हवेली में निवास किया। वहाँ पर भगवान के वचन रूपी सूर्य द्वारा आपने धर्म रूपी कमल को विकसित किया। और जैन तथा जैनेतर जनता के हृदय-प्रदेश में, कर्म-ग्रन्थि का समूल नाश करने के लिए,धर्म के प्रभाव को स्थायी रूप से अंकित कर दिया ॥२७३-२७५॥

तत्रातपत्सोष्णजलाश्रयेण, मासं मथाचन्द्रयतिस्तपस्वी ।
तत्पारणान्ते जिनशास्त्रशिष्ट्या, दानैर्यशोभिःसुरभीकृतासङ्गम
तपोव्रतस्याचरणादवश्यं, पुण्यावधेः सिद्धिरसादिवातः ।
कल्याणकोटि कलयाञ्चकार, कराम्बु केकस्य न लास्यलीलम्
तत्रोल्लसल्लास्यभरं तरङ्गिगीतध्वनिस्फूर्जिततूर्यनादः ।
प्रमोदयामासकथाप्रबन्धैर्विशेषतोऽशेषमनीषिहृद्यैः ॥२७८॥




श्रीमान् स्वर्गीय महाराजाधिराज सवाई सर माधोसिंह जी साहब बहादुर, जयपुर

तपः प्रमुग्धक्षितिपालरत्न श्रीमानसिंहस्य सुशासनञ्च ।
ल्योकारनाडिंधमकुम्भकारमस्त्रावनन्धत्पशुघातस्थना: ॥२७६

भावार्थ—वहाँ पर भी आपके समीप तपस्वी श्री मयाचंद्रजी महाराज ने धर्म-ध्यान में लीन होकर केवल गर्म जल के आधार से ३० दिन की तपश्चर्या की। और शास्त्रानुकूल दान और यश से अपने को सुशोभित किया ॥२७६॥ तप-व्रत के आचरण से वास्तव में महान् अपूर्व प्रभाव आत्मा में जागृत हो जाता है। तपस्या के प्रभाव से क्या-क्या कल्याण प्राप्त नहीं होते? अर्थात् तपस्या के प्रभाव से सब कुछ हो सकता है ॥२७७॥ तप-व्रत की पूर्ति के दिन, जन-समाज में, नाना प्रकार के मङ्गल-गीत गाए गये। और आनन्द पूर्वक तपोत्सव मनाया गया। चरित्रनायकजी के हृदय-स्पर्शी व्याख्यानों से विद्वज्जनों के हृदय-कमल विकसित हो उठे ॥२७८॥ तपस्वी श्री मयाचन्द्रजी के तप-प्रभाव से मुग्ध हो कर, जयपुर नरेश हिज हाईनेस श्रीमान् राज-राजेन्द्र श्री महाराजाधिराज सवाई मानसिंहजी साहब बहादुर ने पारणे के दिन लुहार, सुनार और कुम्भकारादि की भट्टियाँ एवं बूचड़खाने अपनी राज-घोषणा के द्वारा बन्द करवा दिये। और सिंह आदि माँसाहारी जीवों को भी उस दिन दूध पिलाया गया ॥२७९॥

चातुर्मासमहोत्सवं मुनिवरः पुष्ट्वा ततोऽयात्क्रमै-
श्चातुर्मासमिभाश्वभक्तिवसुधाऽब्दे मन्दसौरे पुरे ।
मार्गेऽदीक्षिमहाजनः शुचिमतिः प्राग्वाट् छगचन्द्रजी,

पश्चाद्रामपुरे कृतं निधिहय द्वारावती वत्सरे ॥२८०॥
तद्वर्षे शुचिमाघमासि विदिते श्रीमन्दसौरस्थले,
दीक्षां दुग्गडगोत्रभूतवणिजौ ताताङ्गजौ श्रद्धया ।
लक्ष्मीचन्द्रपवित्रशिष्टनयभृच्छ्वेतांशुशुभ्रप्रभ,
हीरालालसुधर्मभावनिरतौ सम्प्रादधातां तदा ॥२८१॥

भावार्थ—जयपुर का चातुर्मास समाप्त करके आपने वि० सं० १९७८ का चातुर्मास मन्दसोर में किया। उसी वर्ष के मार्गशीर्ष मास मे मन्दसोर निवासी पोरवाड़ महाजन श्री छब्बालाल जी, आपकी सेवा में दीक्षित हुए। तत्पश्चात् विक्रम संवत् १९७९ का चातुर्मास रामपुरा (होलकर स्टेट) में मनाया गया ॥२८०॥ रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण होने के बाद उसी वर्ष माघ मास में मन्दसौर निवासी दूगड़ गोत्रोत्पन्न श्री लक्ष्मीचन्द्र जी एवं श्री हीरालालजी यह दोनों पिता-पुत्र चरित्रनायकजी की सेवा में दीक्षित हुए ॥२८१॥

अगमदजयमेरुं धर्मसंवर्धनाय,
नभवसुनिधीभूमीवत्सरे योगनिष्ठः ।
कृतनिखिलपदार्थद्योतनां भारतोद्धाम्,
वितरति धुतदोषां सार्हतीं भारतीं वः ॥२८२॥

भावार्थ—वि० सं० १९८० का चातुर्मास आपने धर्म की विशेष वृद्धि के निमित्त अजमेर में किया। यहाँ पर आपने वीर

प्रभु द्वारा प्रर्रूपित तत्त्वों का भली प्रकार से निरूपण करके धर्म-ध्यान का दिव्य प्रकाश किया ॥२८२॥

प्रायाद्गुरोर्भक्तिनिषिक्तचेते, ततो मुनिर्व्यावरनामपुर्याम्
दृष्ट्वागुरुं योगपनन्दलालममूमुदत्पादसरोजभृङ्गाः॥२८३॥
तत्पदनादैद्गुरुणा सहैपस्तालं लुसानीश्च मदारियाञ्च ।
कोशीस्थलं गङ्गपुरं पुरञ्च यात्वा समायात्पुरभीलवाडाम् ॥
व्याख्यानविज्ञाःसुधियोमुनीन्द्रास्तत्राचकासुःस्वरशक्तिगुम्फाः
चैत्रेसिते द्वादशमीतिथौ च सोऽसेऽदिदीक्षित्त्वणिग्मनुष्यान् ॥
निर्विण्णं तं महाभागं, रत्नलालं गुणान्वितम् ।
भण्डारीगोत्रसम्भूतं श्रीमद्रिखभचन्द्रकम् ॥२८६॥
प्राडवागन्वयजं चैव मुणोतं राजमल्लकम् ।
दशसहस्रसंख्याताजनाः प्राणैयुरुत्सवम् ॥२८७॥
चैत्रेमहावीरनिभोजेयन्ती दिने समारोहणमापविष्ठ ।
प्रसिद्धवक्ता मुनिचौथमल्लो विद्वत्सु रतन मुनिदेविलालः ॥
सद्भारतीद्धाः सकलाः मुनीन्द्रा इत्यादयः पूर्णतया चकासुः ।
जिनेन्द्रधर्मस्य समुन्नतीनां प्रमोदमुद्राः समधुर्जनानाम् ॥
ततोऽगमद्रत्नपुरे मुनीशः समान्ययीज्जागजनन्दचन्द्रे ।
वर्षे तथा सद्गुरुपादपद्म श्रित्वा तनित्वा जिनधर्मवृद्धिम् ॥

भावार्थ—अजमेर से विहार कर आप ब्यावर पधारे । यहाँ पर गुरुवर्य श्री नन्दलालजी म० विराजमान थे । अतः आप यह

प्रकार पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर के आपने वहाँ पर भी महान् उग्र तपश्चरण एवं धर्मोपदेशादि कार्यों से चातुर्मास समाप्त करके विहार किया ॥२६२॥

अम्लावदं वीक्ष्य ततोमुनीन्द्रो नन्दावतां चैव निमोदमायात्
आकोदडायां न्यवसत्प्रभावी श्रीमद्गुरोः पादसरोजभृङ्गः॥
वचोहरस्तत्र समारिरच्च वाणीमभाणीत्सहसा मुनीन्द्रम् ।
वणिगदफड्या कुलजोगुलाबचन्द्रोऽधुनाऽत्रीभजतोपताम् ॥
समीक्षितुं त्वच्चरणारविन्दमेतुं स्तवीने पुरजावरायाम् ।
नोनत्त्र लिप्सां कृपया प्रभोत्वं तनुष्व धर्म हि पिपूर्हि सौख्यं
मुनीश्वरः श्रीगुरुणा सहैव श्रीजावरायां समयात्ततश्च ।
समीक्ष्य तं श्रेष्ठिवरोऽवदच्च त्वद्दर्शनानन्दमयोत्सवोमे ॥
गुर्वास्यचन्द्रामृतसिक्तसङ्घः, पर्तुं चतुर्मासमुदग्रभावैः ।
सम्प्रार्थयासमास मुनीन्द्रवृन्दं, स्थित्वा ततोऽवर्धत जैनधर्मम्
तिस्रस्ततः प्रावृष उत्सवेन, समव्ययत्सङ्घशुभाग्रहेण ।
श्रीजावरायां मुनिसत्तमोऽयं, धर्मस्य वृद्धिं महतीं ततान ॥
अतीतपत्तत्र तपोधनश्च, नाभा छवालाल उदग्रबुद्धिः ।
प्रणम्य सर्वज्ञमनन्तमीशं, जिनेन्द्रचन्द्रं धुतकर्मन्धम् ॥२६६

अष्टचत्वारिंशद्दिनान्युष्णोदकाश्रयेण ।
समातन्त्रित योगराट् रुद्ध्वा मनोहरिम् ॥३००॥

भावार्थ—वहाँ से अमरावद, नन्दावता और निम्बोद आदि

क्षेत्रों को पवित्र करते हुए हमारे चरित्रनायक, गुरु-पद-कमल-भ्रमर प्रभावशाली श्री खूबचंद्रजी म० ने आँकोदड़ा नामक ग्राम को अलंकृत किया ॥२६६॥ जिस समय हमारे चरित्रनाकजी अपने गुरु महाराज के साथ आँकोदड़ा में विराजमान् थे। उसी समय एक व्यक्ति ने जावरा से आकर निवेदन किया, कि-"मुनिनाथ ! जावरा में सेठ गुलाबचंदजी दफड़िया अस्वस्थ हैं। वे श्रीमान् के चरण-कमल के दर्शन करने के लिए चिर-अभिलाषी हैं। और प्रभु की पावन-शरण में उन्होंने विनय पूर्वक प्रार्थना करवाई है, कि आप जावरा में पदार्पण करके धर्म तथा कल्याण का प्रशस्त मार्ग बतला कर मुझे कृत-कृत्य करें" ॥२६४-२६५॥ संदेश-वाहक द्वारा कीगई प्रार्थना पर ध्यान देकर आप अपने गुरुजी के साथ शीघ्र ही जावरा पधारे। और वहाँ सेठजी को दर्शन देकर उन्हें परमनंदित किये ॥२६६॥ गुरुजी के चंद्र-मुख द्वारा भाषित अमृतमयी अनुपम वाणी से तृप्त होकर जावरा श्री संघ ने अपने यहाँ चातुर्मास करने के लिए मुनिराजों की सेवा में प्रार्थना की। मुनिराजों ने इस विनंती को स्वीकार कर वहाँ पर धर्म की खूब ही प्रभावना की ॥२६७॥ संघ की प्रार्थना से लगातार तीन चातुर्मास अर्थात् वि० सं० १६८३-८४ और ८५ का का चातुर्मास आपने जावरा में ही व्यतीत करके, वहाँ धर्म की खूब ही अभिवृद्धि की ॥२६८॥ संवत् १६८३ में वहाँ तपोधन मुनि श्री छगनलालजी म० ने मोक्ष-प्रदायी श्रीजिनेंद्रदेव के ध्यान में लीन होकर केवल गर्म जल

गुरुदेव के पवित्र चरण-कमल की शरण को प्राप्त करके भ्रमर की भाँति परम प्रमुदित हुए ।।२८३।। फिर गुरुजी के साथ ही साथ वहाँ से विहार कर मार्ग में ताल, लसानी, मदारिया, कोशीथल, गङ्गापुर और पुर आदि स्थानों के निवासी भूले-भटके संसारी जीवों को धर्म का सन्देश सुनाते हुए भीलवाड़ा में पधार गये ।।२८४।। भीलवाड़ा में उस समय व्याख्यान कला-प्रवीण विद्वद्वर्य प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज आदि ३७ मुनि-राज विराजमान थे। वहाँ पर उक्त प्रसिद्धवक्ताजी की सेवा में चैत्र शुक्ल द्वादशी सोमवार के दिन, तीन वैश्य भाइयों की दीक्षा हुई ।। २८५ ।। उन तीनों दीक्षार्थियों में से प्रथम दीक्षार्थी *श्री राजमलजी थे। और दूसरे भंडारी गोत्रोत्पन्न श्रीमान्* रिखबचन्दजी तथा तीसरे पोरवाड़ वंशोत्पन्न श्री रत्नलाल जी थे। इन तीनों दीक्षार्थियों के दीक्षा-महोत्सव का कार्यक्रम दस हजार की विराट् मानव-मेदिनी के बीच बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ ।।२८६-२८७।। तदनन्तर चैत्र शुक्ला १३ के दिन मुनि-मण्डल की संरक्षता में महावीर जयन्ती महोत्सव बड़े उत्साह पूर्वक मनाया गया। प्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी म०; विद्वद्वर्य पं० मुनि श्री देवीलालजी म०, एवं हमारे चरित्रनायकजी आदि मुनि-रत्नों ने धर्मोन्नति के लिए जन-समाज में अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा आनन्द-वर्षा की झड़ी लगा दी। जिससे भव्य प्राणियों का हृदय अत्यन्त प्रमुदित हुआ ।।२८८-२८९।। इसके पश्चात वि० संवत

१६८१ का चातुर्मास आपने अपने गुरुजी की आज्ञा शिरोधार्य कर रतलाम में किया। वहाँ पर भी पूर्ण रूप से धर्म-जागृति हुई ॥२६०॥

चातुर्मासमभीप्सितं करसुरद्वारत्नमानत्सरे,
नेतुं पर्यटनेऽग्रसिष्टसहसा नेत्रव्यथानीमचे।
तत्स्थानाद्गुरुणा सहैव समयान्मल्हारगढस्थले,
डाक्टर्श्रीधनजीसुदत्तपुरुषः संप्राचिकित्सीत्तदा ॥२६१॥
पश्चात्प्रेक्टिशनमुखामृतवचः पीयूषपूर्णाकरः,
डाक्टर्श्रीयुतरामनाथसुगुणी श्रीमन्दसौरेऽपिजत्।
तेन प्रकृति संस्थितोमुनिवरोगूलाबचन्द्रः सुधी-
श्चातुर्मासमनिक्तपूर्णयशसा तपोदुश्चरम् ॥२६२॥

भावार्थ—रतलाम का चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् वि० सं० १६८२ का चातुर्मास मन्दसौर में मनाने के लिए आप अपने गुरु श्री नंदलालजी म० की सेवा में नीमच पधारे। वहाँ पर आपकी एक आँख में बड़ी भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई। अतः आप अपने गुरु श्री के साथ ही मल्हारगढ़ पहुँचे। वहाँ पर धनजी भाई नामक एक चतुर डॉक्टर ने आपकी नेत्र-पीड़ा की पूर्ण चिकित्सा की ॥ २६१ ॥ फिर आप मल्हारगढ़ से मन्दसौर पहुँचे। वहाँ एक सिद्ध-हस्त प्राइवेट डाक्टर श्री रामनाथजी की चिकित्सा द्वारा चरित्रनायकजी की नेत्र-पीड़ा शान्त हुई। इस

प्रकार पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर के आपने वहाँ पर भी महान उग्र तपश्चरण एवं धर्मोपदेशादि कार्यों से चातुर्मास समाप्त करके विहार किया ॥२९२॥

अम्लावदं वीच्य ततोमुनीन्द्रो नन्दावतां चैव निमोदमायात्
आकोदडायां न्यवसत्प्रभावी श्रीमद्गुरोः पादसरोजभृङ्गः॥
वचोहरस्तत्र समारिरिच्च वाणीमभाणीत्सहसा मुनीन्द्रम् ।
वणिगदफड्या कुलजोगुलाबचन्द्रोऽधुनाऽवीभजतोपताम् ॥
समीक्षितुं त्वच्चरणारविन्दमेतुं स्तवीने पुरजावरायाम् ।
नोनन्यत्र लिप्सां कृपया प्रभोत्वं तनुष्व धर्मं हि पिपूर्हि सौख्यं
मुनीश्वरः श्रीगुरुणा सहैव श्रीजावरायां समयात्ततश्च ।
समीक्ष्य तं श्रेष्ठिवरोऽवदच्च त्वद्दर्शनानन्दमयोत्सवोमे ॥
गुर्वास्यचन्द्रामृतसिक्तसङ्घः, पर्तुं चतुर्मासमुदग्रभावैः ।
सम्प्रार्थयासमास मुनीन्द्रवृन्दं, स्थित्वा ततोऽवर्धत जैनधर्मम्
तिस्त्रस्ततः प्रावृष उत्सवेन, समव्ययत्सङ्घशुभाग्रहेण ।
श्रीजावरायां मुनिसत्तमोऽयं, धर्मस्य वृद्धिं महतीं ततान ॥
अतीतपत्तत्र तपोधनश्च, नाभा छवालाल उदग्रबुद्धिः ।
प्रणम्य सर्वज्ञमनन्तमीशं, जिनेन्द्रचन्द्रं धुतकर्मन्धम् ॥२९९

अष्टचत्वारिंशद्दिनान्युष्णोदकाश्रयेण ।
समातन्त्रित योगराट् रुद्ध्वा मनोहरिम् ॥३००॥

भावार्थ—वहाँ से अमरावद, नन्दावता और निम्बोद आदि

क्षेत्रों को पवित्र करते हुए हमारे चरित्रनायक, गुरु-पद-कमल-भ्रमर प्रभावशाली श्री खूबचंदजी म० ने आँकोदड़ा नामक ग्राम को अलंकृत किया ॥२६३॥ जिस समय हमारे चरित्रनायकजी अपने गुरु महाराज के साथ आँकोदड़ा में विराजमान् थे। उसी समय एक व्यक्ति ने जावरा से आकर निवेदन किया, कि-"मुनिनाथ ! जावरा में सेठ गुलाबचंदजी दफडिया अस्वस्थ हैं। वे श्रीमान् के चरण-कमल के दर्शन करने के लिए चिर-अभिलाषी हैं। और प्रभु की पावन-शरण में उन्होंने विनय पूर्वक प्रार्थना करवाई है, कि आप जावरा में पदार्पण करके धर्म तथा कल्याण का प्रशस्त मार्ग बतला कर मुझे कृत-कृत्य करें" ॥२६४-२६५॥ संदेश-वाहक द्वारा कीगई प्रार्थना पर ध्यान देकर आप अपने गुरुजी के साथ शीघ्र ही जावरा पधारे। और वहाँ सेठजी को दर्शन देकर उन्हें परमनंदित किये ॥२६६॥ गुरुजी के चंद्र-मुख द्वारा भाषित अमृतमयी अनुपम वाणी से तृप्त होकर जावरा श्री संघ ने अपने यहाँ चातुर्मास करने के लिए मुनिराजों की सेवा में प्रार्थना की। मुनिराजों ने इस विनंती को स्वीकार कर वहाँ पर धर्म की खूब ही प्रभावना की ॥२६७॥ संघ की प्रार्थना से लगातार तीन चातुर्मास अर्थात् वि० सं० १९८३-८४ और ८५ का का चातुर्मास आपने जावरा में ही व्यतीत करके, वहाँ धर्म की खूब ही अभिवृद्धि की ॥२६८॥ संवत् १९८३ में वहाँ तपोधन मुनि श्री छगनलालजी म० ने मोक्ष-प्रदायी श्रीजिनेंद्रदेव के ध्यान में लीन होकर केवल गर्म जल

के अधार से अपने मन रूपी चंचल वंदर को वश में करके अड़तालीस दिन का अनशन-व्रत किया ॥२६६–३००॥

जैनज्ञानसुवृद्धिनामरुचिर श्रीपाठशालाश्रिताः,
सर्वे बालकबालिका मुनिवर श्रीसौख्यलालस्तदा ।
पर्यैक्षिष्टसुशिक्षणं प्रतिफलैरापिप्रयच्छ्रीनवल–
मल्लस्यात्मजसूर्यमल्ल उचितो धोकावटं कोद्भवः ॥२०१

पुस्तकैर्वसनैश्चैव त्रयोः संपुटकादिभिः ।
स्वादिष्टैः शर्कराखाद्यैः समाभात्तुमहोत्सवम् ॥२०२॥
कुमारा एकपञ्चाशत्संख्याता भारतीगृहे ।
ऊनविंशतिकौमार्यस्तत्काले प्रायशोऽध्यगुः ॥२०३॥

भावार्थ—इस समय चरित्रनायकजी के सुशिष्य मुनि श्री सुखलालजी म० ने स्थानीय श्री जैन ज्ञानवृद्धि पाठशाला के बालक-बालिकाओं की परीक्षा ली। परीक्षा का परिणाम पूर्ण संतोषजनक निकला। अतः इसके उपलक्ष में यादगिरी निवासी सेठ श्री नवलमलजी सूर्यमलजी सा० धोका की ओर से पारितोषिक दिया गया ॥२०१॥ पुस्तकें, कपड़े आदि के साथ-साथ पेड़ों की भी प्रभावना हुई। उस समय पाठशाला में ५१ लड़के और १६ कन्याएँ विद्याभ्यास करती थीं ॥२०२–२०३॥

चातुर्मासं जावरायां समाप्य, ऊबरवाडां बोरखेडां तथा च ।
हथ्नारां स नादखेटां हु लित्वा, शैलानायामाहिनोद्धर्मवृद्ध्यै

प्रायात्तदाशिवगढं शुभरावटीञ्च,
योगीश्वरः करवडं पिटलावदं सः ।
सञ्ज्ञानदर्शनदर्शनचरित्रपवित्रचेता,
प्रोर्णात्ततो निजपथे सहसा खवासाम् ॥२०५॥
स्थित्वानृपालनगरे शुभझावु आख्ये,
बोधामृतैः समपविष्ठकिरातजातिम् ।
मांसाशनञ्च मदिरा मदिरुधञ्चहिंसाम्,
संसर्ग एव महतां महते फलाय ॥२०६॥

भावार्थ—जावरा का चातुर्मास समाप्त करके ऊपरवाड़ा, बोरखेड़ा, हथनारा, नाँदलेरा आदि स्थलों को पावन करते हुए आप रैलाना पधारे ॥२०४॥ और वहाँ से शिवगढ़, रावटी, करवड़, पेटलावद, खवासा, और थाँदला होते हुए झाबुआ नामक राजधानी में पधारे। वहाँ आपने थोड़े दिन निवास कर के अपने सदुपदेश द्वारा अनेक भील लोगों को मांस-भक्षण, मदिरा-पान और जीव-हिंसा आदि का परित्याग करा कर उन्हें पावन किया। सत्य है, महान् पुरुषों की सत्संगति शुभ-फल-प्रदायिनी ही होती है।

निरस्तभूपोऽपियथा विभाति, पवित्रचारित्रविभूषितात्मा
धारानगर्यामपथीत्तथा च, शिष्यैः सहाधत्तजिनेन्द्रधर्मम्

भावार्थ—तदनन्तर आप झाबुआ से विहार करके अपने शिष्य-मण्डल सहित निरालंकार होते हुए भी चारित्र रूपी अलंकार

से सुशोभित होते हुए आप धारा नगरी पधारे। और वहाँ पर भी धर्म का महान् उद्योत किया ॥२०७॥

धाराद्विहृत्यागतक्षेत्रकेषु, हिंसादिकृत्यांश्च निवार्यमानः।
श्रीखाचरोदे रतलामसंघः प्रार्थाकृते तं समुदः प्रपेदे ॥२०८॥
अत्याग्रहात्पूज्यनिदेशनाच्च, पण्णागभूखण्डमहीमिते सः।
रत्नै र्ललामां च पुनश्चचाल, मासाय तुर्याय मुनीशचन्द्र ॥
तत्स्थाने सुतपोधनोमुनिवरोनामाछबालालजी,
प्रातासीद्वसुधैवहानि नियमैरुष्णोदकस्याश्रयैः।
भाद्रे शुक्लचतुर्दशे कुजयुते घस्रे तपः पारणे,
सद्भक्ताः समनेनिजुः शुभतरं भक्तिप्रभावोत्सवम् ॥२१०॥
श्रीमत्सज्जनसिंहशुभ्रचरितश्रीरत्नपूर्भू पति,
निर्देशः समरुद्धपाकपुटिकानाडिंधमानां ततः
सूनांसीधगृहं तथान्यदुरितस्थानं गुरुज्ञानतो-
वीतत्रासविलासहासरभसं ध्यात्वा जिनानां पतिम् ॥२११॥
ऐपुः सप्तसहस्रभक्तमनुजाः सानन्दवीच्युच्छलाः,
मन्त्रीग्रासमहीभृतोनरवराः पञ्चेडपालादयः।
मुन्नालालमुनीन्द्रगच्छतिलका वादीभपञ्चाननाः,
आसन् श्रीगुरुधर्ममूर्तिमुनयः कल्याणकन्दाभ्युदाः ॥२१२॥

भावार्थ—धार से विहार कर आपने नागदा, बिड्वाल, कोद, बखतगढ़, बदनावर और मूलथान आदि क्षेत्रों को पावन किया।

यों मार्ग की समस्त देहाती (ग्रामीण) जैन-जैनेतर प्रजा का पथ-प्रदर्शन करते हुए तथा उन्हें जीव-हिंसादि कुकृत्यों के फंदों से विमुक्त करते हुए आपने खाचरोद की भूमि में पदार्पण किया।

जब आप खाचरोद में विराजते थे। तब रतलाम का श्री संघ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। और आगामी चातुर्मास अपने यहाँ करने की उसने जोरदार प्रार्थना की ॥३०८॥ आचार्य श्री एवं गुरुवर्यजी म० के आदेशानुसार श्री संघ की विनंती को मान देकर आपने संवत् १९८६ का चातुर्मास मध्यभारत के सुप्रसिद्ध नगर रतलाम में किया ॥३०९॥ रतलाम में आपके समीपवर्ती तपस्वी मुनिश्री छब्बालालजी महाराजने केवल गरम जल केआधार से ४१ दिन की तपश्चर्या की। भाद्रपद शुक्ला १४ मङ्गलवार के दिन पारणा हुआ। अतः उस दिन अन्यन्य भाविक भक्तों ने मिलकर बड़े ही समारोह से भक्ति-भाव पूर्वक तप महोत्तव मनाया ॥३१०॥ उस महोत्सव के दिन रतलाम नरेश हिज़ हाईनेस महाराजा सर सज्जनसिंह जी बहादुर के, सी, आई, के, सी, वी, ओ, ए, डी, सी, ई, ने अपनी राज-घोषणा द्वारा शहर के समस्त हिंसा-काण्डों को स्थगित करवा कर भगवान् महावीर के गौरवपूर्ण धर्म के प्रति अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा प्रकट की ॥३११॥ उस तपोत्सव पर धर्म-मूर्ति, कल्याणकारी तथा आदर्श मुनिराजों के प्रभाव से लगभग सात हजार जन-संख्या उपस्थित हो गई थी। रतलाम राज्य के दीवान तथा अन्यान्य जागीरदारों ने और पंचेड के ठाकुर साहब

से सुशोभित होते हुए आप धारा नगरी पधारे। और वहाँ पर भी धर्म का महान् उद्योत किया ॥३०७॥

धाराद्विहृत्यागतक्षेत्रकेषु, हिंसादिकृत्यांश्च निवार्यमानः।
श्रीखाचरोदे रतलामसंघः प्रार्थाकृते तं समुदः प्रपेदे ॥३०८॥
अत्याग्रहात्पूज्यनिदेशनाच्च, पण्णागभूखण्डमहीमिते सः।
रत्नैर्ललामां च पुनश्चचाल, मासाय तुर्याय मुनीशचन्द्र॥
तत्स्थाने सुतपोधनोमुनिवरोनामाछबालालजी,
प्रातासीद्वसुधैवहानि नियमैरुष्णोदकस्याश्रयैः।
भाद्रे शुक्लचतुर्दशे कुजयुते घस्रे तपः पारणे,
सद्भक्ताः समनेनिजुः शुभतरं भक्तिप्रभावोत्सवम् ॥३१०॥
श्रीमत्सज्जनसिंहशुभ्रचरितश्रीरत्नपूर्भूपति,
निर्देशः समरुद्धपाकपुटिकानाडिंधमानां ततः
सूनांसीधगृहं तथान्यदुरितस्थानं गुरुज्ञानतो-
वीतत्रासविलासहासरभसं ध्यात्वा जिनानां पतिम् ॥३११॥
ऐषुः सप्तसहस्रभक्तमनुजाः सानन्दवीच्युच्छलाः,
मन्त्रीग्रासमहीभृतोनरवराः पञ्चेडपालादयः।
मुन्नालालमुनीन्द्रगच्छतिलका वादीभपञ्चाननाः,
आसन् श्रीगुरुधर्ममूर्तिमुनयः कल्याणकन्दाभ्युदाः ॥३१२॥

भावार्थ—धार से विहार कर आपने नागदा, बिड़वाल, कोद, बखतगढ़, बदनावर और मूलथान आदि क्षेत्रों को पावन किया।

यों मार्ग की समस्त देहाती (ग्रामीण) जैन-जैनेतर प्रजा का पथ-प्रदर्शन करते हुए तथा उन्हें जीव-हिंसादि कुकृत्यों के फंदों से विमुक्त करते हुए आपने खाचरोद की भूमि में पदार्पण किया।

जब आप खाचरोद में विराजते थे। तब रतलाम का श्री संघ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। और आगामी चातुर्मास अपने यहाँ करने की उसने जोरदार प्रार्थना की ॥३०८॥ आचार्य श्री एवं गुरुर्यवजी म० के आदेशानुसार श्री संघ की विनंती को मान देकर आपने संवत् १६८६ का चातुर्मास मध्यभारत के सुप्रसिद्ध नगर रतलाम में किया ॥३०६॥ रतलाम में आपके समीपवर्ती तपस्वी मुनिश्री छब्बालालजी महाराजने केवल गरम जल केआधार से ४१ दिन की तपश्चर्या की। भाद्रपद शुक्ला १४ मङ्गलवार के दिन पारणा हुआ। अतः उस दिन अन्यन्य भाविक भक्तों ने मिलकर बड़े ही समारोह से भक्ति-भाव पूर्वक तप महोत्सव मनाया ॥३१०॥ उस महोत्सव के दिन रतलाम नरेश हिज हाईनेस महाराजा सर सज्जनसिंह जी बहादुर के, सी, आई, के, सी, वी, ओ, ए, डी, सी, ई, ने अपनी राज-घोषणा द्वारा शहर के समस्त हिंसा-काण्डों को स्थगित करवा कर भगवान् महावीर के गौरवपूर्ण धर्म के प्रति अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा प्रकट की ॥३११॥ उस तपोत्सव पर धर्म-मूर्ति, कल्याणकारी तथा आदर्श मुनिराजों के प्रभाव से लगभग सात हजार जन-संख्या उपस्थित हो गई थी। रतलाम राज्य के दीवान तथा अन्यान्य जागीरदारों ने और पंचेड के ठाकुर साहब

श्री चैनसिंहजी महोदय ने भी मुनिवरों के व्याख्यान में भाग लिया था ॥३१२॥

जिनेन्द्रधर्मस्य समुन्नतीनां, सार्वीत्रकीणां परभागभाजाम् ।
उद्घाटयामासमहोत्सवेन, मुनीशबोधैर्जिनपाठशालाम् ॥

भावार्थ—वहाँ रतलाम में जैन धर्म तथा विद्या की उन्नति के हेतु धर्म-जिज्ञासुओं के लिए मुनि श्री खूबचन्द्रजी म० के सदुपदेश से एक जैन पाठशाला का उद्घाटन हुआ ॥३१३॥

समाप्य षण्णागनिधीन्दुजातं, सप्ताष्टभूखण्डमहीभवञ्च ।
मासाश्चतुर्यान्नगराननेकान्, संपूयमानोनिमचं जगाम ॥
मुन्नेन्दुकं तत्र मुनीशवर्यम्, संसेव्य संदर्श्य सुमाननीयम् ।
तैरेवसार्धं पुनरेव तत्र, श्रीमन्दसौरमहितं चचार ॥३१५॥
तत्रैव भण्डारिकुलस्य पाता, श्रीकुकडेशस्य निवासीकृष्णः
संदीक्षितस्तत्र तदैव दैवाद्दर्श हस्तीमलजिन्मुनीशम् ॥३१६

भावार्थ—इस प्रकार संवत् १९८६-८७ और के ८८ चातुर्मास को समाप्त करके आपने रतलाम से विहार किया। मार्ग में बाँग-रोद, खाचरोद, नागदामण्डी, आलोट, ताल, गंगधार, सीतामऊ, नारायणगढ़, मल्हारगढ़, और जीरण आदि ग्रामों और नगरों की धर्म-पिपासु जनता में धर्म-प्रचार करते हुए नीमच में विराजित पूज्य श्री मुन्नालालजी म० की सेवा में पधारे। फिर वहाँ से पूज्य श्री के साथ ही साथ आपका शुभागमन मन्दसौर नगर में हुआ।

वहाँ पर कुकड़ेश्वर निवासी भण्डारी गोत्रोत्पन्न लघु वयस्क दीक्षार्थी श्री किशनलालजी की दीक्षा हुई। उसी अवसर पर मारवाड़-देश-पावन-कर्ता पूज्य श्री हस्तीमलजी म० ठाने ८ का शुभागमन हुआ ॥३१४-३१५-३१६॥

मुन्नेन्दुकोहस्तिमलश्च पूज्या-वेकाशने धर्ममलं दिशन्तौ।
विरेजतुः सम्मिलितौ शुभौता-वेकाशने राजितशुक्रजीवौ॥
श्रीहस्तिमल्लोमुनिपूज्यवर्यान्मुन्नेन्दुकाचारितनायकाच्च।
तुर्याणि सूत्राणि रहस्यपूर्णं, प्राध्यैष्ठ तत्वस्य सुबोधकानि

भावार्थ—पूज्य श्री मन्नालालजी म० और पूज्य श्री हस्तीमल जी म० दोनों एक ही स्थान पर ठहरे। दोनों के व्याख्यान भी सम्मिलित ही हुए। पूज्य श्री हस्तीमलजी म० ने पूज्य श्री मन्नालालजी म० तथा श्री चरित्रनायकजी से चार सूत्रों का अध्ययन किया। तथा जैनागमों के गूढ़ रहस्य की अनेक धारणाएँ हृदयंगम की ॥३१७-३१८॥

नन्दागभूखण्डमहीमिते सः, समाप्य वृष्टेः समयं मुनीन्द्रः
द्रष्टुं गुरुं रत्नललामपुर्याम्, श्रीजावरातोहितदं प्रपेदे॥
आज्ञां गुरोः प्राप्य सुपौषमासे, श्रीमन्दसौरे ह्युपमासिसश्चन्
सम्मेलने पूज्यमुनीश्वरेण साधं तदाजमेरपुरीं प्रतस्थे॥३२०॥

भावार्थ—संवत् १९८९ का चातुर्मास जावरा में समाप्त करके आप अपने गुरु जी के दर्शनार्थ रतलाम पधारे। और वहाँ से फिर गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके पौष मास में मंदसोर की भूमि को पावन करते हुए आचार्य के साथ-ही-साथ बृहत साधु-सम्मेलन में

सम्मिलित होने के लिए आपने अजमेर की ओर प्रस्थान किया ॥३१६-२०॥

मार्गेष्वनेकान्नगरान्व्रपेणे, सिञ्चन् प्रसिद्धे भिलवाडनाम्नि
श्रीपूज्यमुन्नेन्दुमुनीशसंघे, संमेलने तत्र समाजगाम ॥३२१॥
तत्रैव सर्वे नियमाः नियुक्ताः यैः शान्तदान्ताःमुनयो भवेयुः
स्वसम्प्रदायस्य मुनीशवर्यैर्भू खण्डनेत्रैरतितत्वविद्भिः ॥
तदारिक्तोमुनयोद्विसप्ताः ऋष्याख्यपूज्येन युताः समस्ताः ।
एकत्र पट्टे शमभावपूर्णं धर्मस्य तत्वं दिदिशुः सभायाम्

भावार्थ—मार्ग में अनेक शहरों व ग्रामों में वीर-वाणी का घोष करते हुए आचार्य श्री के साथ आपका शुभागमन मेवाड़ प्रान्त के सुप्रसिद्ध नगर भीलवाड़ा में हुआ। वहाँ पर पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनियों का सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में साम्प्रदायिक निममोपनियम बनाये गये। उसी अवसर पर वहाँ स्व-सम्प्रदाय के २६ मुनिराजों के अतिरिक्त जैन-शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी म०, तपस्वी श्री देवजी ऋषि जी म० और पंडित मुनि श्री आनंद ऋषि जी म० आदि चौदह मुनिराज भी पधारे थे। अतः दोनों पूज्य और इनके समस्त मुनियों ने एक ही स्थान पर निवास किया था। व्याख्यान भी सम्मिलित ही हुए थे ॥३२१-३२२-३२३॥

मेवाड़प्रान्तस्थपुराननेकान् धर्मे नियुञ्जंश्च ततो विहृत्य ।
श्रीब्यावरं धार्मिकलोकपूर्णम्, संप्रापतत्वेषु निषक्तचेताः ॥

तत्राभवन्नेकमुनीशसंघाः स्वसम्प्रदायस्य मनीषिवर्याः ।
यत्राभवच्छ्रीमुनिमन्नलालस्तत्रैव समगंस्त सुशान्तचेताः ॥
श्रीव्यावराच्चैत्रसिते नवम्यां मुन्नेन्दुनामाजयमेरुपुर्याम् ।
मुनीशसंमेलनभावितायाम् संप्रापयौ शान्तिसमुद्रकोऽसौ ॥

भावार्थ—भीलवाड़े से विहार कर मेवाड़ के कई क्षेत्रों में धर्म का प्रचार करते हुए आप व्यावर पधारे। वहाँ पर लगभग अठारह-उन्नीस सम्प्रदायों के पूज्य मुनिवरों के व्याख्यान रायली के कम्पाउण्ड (जहाँ पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज विराजते थे, उस स्थान) में सम्मिलित रूप से होते थे । व्यावर से विहार कर पूज्य श्री मन्नालालजी म० के साथ ही साथ आप चैत्र शुक्ला ६ को अजर अमर-पुरी अजमेर में पधार गये । जहाँ कि अखिल भारतवर्षीय बृहत् मुनि-सम्मेलन होने वाला था *॥३२४-३२६॥

---

* श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्री मुन्नालाल जी म० एवं हमारे चरित्रनायकजी का शुभगमन जिस समय अजमेर में हुआ था, उस समय आपका कैसा शानदार विराट् अभिनन्दन और स्वागत हुआ था, तथा बृहत्-मुनि-सम्मेलन में क्या-क्या कार्य हुआ था । इन सब बातों की यथेष्ठ जानकारी के लिए जैन धर्मोपदेष्टा पण्डित मुनि श्री फूलचन्दजी महाराज द्वारा लिखित 'मेरी अजमेर,मुनि-सम्मेलन-यात्रा' तथा विद्वान् ज्योतिषी मुनि श्री मणिलालजी स्वामी द्वारा लिखित 'श्री वीर पट्टावली, और 'श्री युवाचार्यादि पदोत्सव' नामक पुस्तकें तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय के सम्वत् १९९० के मासिक, पाक्षिक और साप्ताहिक पत्रों की फ़ाइलें अवलोकनीय हैं ।

कृष्णाद्वादशमी तिथौ दिवमयान्मुन्नेन्दुः पूज्यस्तदा,
वर्षेऽस्मिन् शुचिमासि सोमदिवसे भुक्त्वा प्रपूर्णं वयः।
द्वात्रिंशच्छुभजैनशास्त्रनिपुणो ज्ञातः क्षमासागरः,
एवं शास्त्रविशारदीयपदवी संप्रार्चितः कोविदैः ॥३२७॥

भावार्थ—उसी वर्ष के आषाढ़ कृष्णा द्वादशी सोमवार के दिन पूज्य श्री मुन्नालालजी महाराज का शरीरान्त हो गया। आप बत्तीस शास्त्रों के ज्ञाता थे। क्षमा के गंभीर सागर थे। इसीलिए विद्वत् समाज द्वारा आप शास्त्र-विशारद के पद से विभूषित किये गये थे ॥३२७॥

चन्द्राननः समाख्यातः शान्तिमुद्राशुभालयः।
तपसाभालपट्टं च यस्यावर्चिष्ट सर्वदा ॥३२८॥
आबाल्याद्वृद्धपर्यन्तं ब्रह्मचर्यमपूपुपत्।
स्वर्गापवर्गसौख्यानि येन हस्ते कृतानि च ॥३२९॥
गम्भीरां मधुरां वाणीमपि यः श्रोत्रसुन्दराम्।
निःशेषशास्त्रनिष्णातां बुद्धिं ध्वस्ततमोमलाम् ॥३३०॥
अशक्तश्च चलितुं पद्भ्यां मुन्नालालोमुनीश्वरः।
दृष्टिर्निष्फलतां याता कम्पितं च शिरोऽभवत् ॥३३१॥
मुनीन्द्रस्कन्धयाप्यानास्थितोऽपञ्चसमानपि।
अजमेरपुरे रम्ये साधुसंमेलनेमु निः ॥३३२॥
त्यक्त्वा शिष्येषु ममतां श्रीमिश्रीमुनिरक्षणे।
स्वीकृत्यैक्यं महाहर्षैरजहात्ससकलं कलिम् ॥३३३॥



धर्म-प्रेमी श्रीमान् सेठ सौभागमलजी

भावार्थ—आपका मुख चन्द्रमा के समान उज्वल कांति का धारक था। तपोबल के कारण आपका ललाट सदैव चमकता रहता था। आप बाल-ब्रह्मचारी थे। आपने स्वर्ग और मुक्ति के सुख को हस्तगत-सा कर लिया था। आपकी वाणी गम्भीर मधुर और कर्ण-प्रिय थी। आपने अपनी विचक्षण बुद्धि के द्वारा बत्तीस सूत्रों के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया था। वृद्धावस्था तथा शारीरिक असमर्थता के कारण आपको पालखी में बैठाये गये थे। और उस पालखी को बड़े-बड़े मुनिराजों ने अपने कन्धों पर उठा कर आपको मुनि-सम्मेलन अजमेर में पहुँचाये थे। वहाँ पर आपने समस्त वाद-विवाद को निवारण कर के तथा शिष्यों पर से अपना ममत्व-भाव दूर कर के मुनि श्री मिश्रीलालजी म० को प्राण-रक्षा के लिए चिरकाल से प्रचलित दो पक्षों के पारस्परिक कलह को मिटा कर ऐक्य की स्थापना की थी ॥२२८–२३३

चातुर्मासमवोढरत्नपुरियोऽपेपिष्टधर्मं निजं,
श्रीमत्सज्जनमान्यपूरुषमनः क्ष्मायां सभावापि यः ।
संसिक्तोऽपि च यैर्वचोऽमृतरसैः कारुण्यकल्पद्रुमो-
दत्तेऽद्यापि फलं सदैव शिवदं विश्वोपकारं भुवि ॥२३४॥

भावार्थ—वि० सं० १९९० का चातुर्मास आपने रतलाम में किया। वहाँ पर आपने (चरित्र नायक जी ने) अपने धर्मोपदेश द्वारा जनता के हृदय रूपी क्षेत्र में दया रूपी कल्पवृक्ष का बीजारोपण किया ॥२३४॥

# पंचम परिच्छेद

## आचार्य-पदारोहण

——:o:——

तद्वर्षेऽर्जुनमासिशुक्रदिवसे शुक्ला तृतीया तिथौ,
श्रीमद्रत्नललामनामनगरे मालव्यदेशस्थिते ।
मुन्नालालमुनीशपट्टफलके सङ्घै र्महोत्साहतः,
सोप्याचार्यपदार्चितः समभुदत् सोल्लासितेजः स्थितिः ॥
एकस्मिन्समयेऽममन्त्रतमुदैः सत्साधुवृन्दैः सह ।
स्वाचार्यार्चितखूबचन्द्रसुगुणी गच्छे स्वकीये त्रुटिम् ।
हर्षैः पोषयितुं सुयोग्यचरितान् साधून् शुभैर्वैरुदै-
रेतत्तस्य विचारितं समतनीद्गन्धं यथा वायुना ॥३३६॥
नानाग्रामजनाग्रसङ्घपुरुषा आचार्याभाभेजिरे,
कर्तुं तन्महदुत्सवं शुभकरं ग्रामे स्वकीये ततः ।
आचार्यस्य विचारगामिपुरुषः श्रीसङ्घमुख्याग्रणी,
संप्राचूकुणतप्रतीतकरणे श्रीमन्दसौरे पुरे ॥३३७॥

**माघे शुक्लशनौ दिने मखतिथौ श्रीमन्दसौरे पुरे,**
**ज्यानन्दग्रहगह्वरीपरिमिते संवत्सरे वैक्रमे ।**
**तत्स्थाने मिलिता जनाः सुकृतिनः सच्छ्रावकाः श्राविकाः,**
**संख्यायां नभपूर्णपुष्करशरज्याज्ञापितायां किल ॥३३८॥**

भावार्थ—उसी वर्ष के फाल्गुन शुक्ला तृतीया शुक्रवार के दिन रतलाम के स्थानकवासी चतुर्विध संघ ने हमारे चरित्रनायकजी की परम पवित्र. कल्याणकारिणी, बोधप्रद और सरस वाणी पर तथा उनके शान्त्यादि आचार्य पदोचित गुणों पर मुग्ध होकर उन्हें स्वर्गीय पूज्य श्री मुन्नालालजी म० के स्थान पर, आचार्य-पद से सम्मानित किये ॥३५॥ आचार्य-पद से अलंकृत होने के पश्चात चरित्रनायक-जी ने चतुर्विध संघ के समक्ष अपने गच्छ के सुयोग्य साधुओं को उनके गुणानुसार जैन-दिवाकर, युवाचार्य, गणि, उपाध्याय, प्रवर्तक, और सलाहकारक आदि पद-प्रदान किये जाने की महत्वपूर्ण घोषणा की। इस घोषणा के शुभ समाचार वायुवेग की तरह नगर-निवा-सियों के कर्ण-कुहरों में गूँज उठे। अन्यान्य ग्रामों और नगरों के श्री संघों ने भी इस महत्वपूर्ण घोषणा का हार्दिक स्वागत किया। और इस पदोत्सव के कार्यक्रम को अपने-अपने ग्रामों में सानंद सम्पादित करने के लिए आचार्य श्री की सेवा में साग्रह प्रार्थना भी की। परन्तु संघ के अग्रगण्य सज्जनों ने इस महोत्सव के कार्यक्रम को सम्पादन करने के लिए मन्दसौर के क्षेत्र को ही उपयुक्त समझ

कर सर्वानुमति से मंदसौर संघ के आमंत्रण को स्वीकार किया। और तदनुसार वि० सं० १६६१ के माघ शुक्ला त्रयोदशी शनिवार के दिन यह "युवाचार्यादि पदोत्सव" सानंद मनाया गया। महोत्सव के समय चतुर्विध संघ की उपस्थिति लगभग पंद्रह हजार की थी। और साधु-साध्वियों की संख्या अनुमानतः १०० के लगभग थी ॥३३५-३३६-३३७-३३८॥ *

---

* अजमेर के श्री बृहत् मुनि-सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् पूज्य श्री मुन्नालालजी म० साहब की आज्ञा प्राप्त करके हमारे चरित्र-नायक पूज्य श्री खूबचन्दजी म० ने अजमेर से रतलाम की ओर प्रस्थान कर दिया। क्योंकि आपके पूजनीय गुरुदेव श्री नन्दलालजी म० वि० सं० १९८९ के फाल्गुन मास में ही शरीर की वृद्धावस्था के कारण रतलाम में ही विराज रहे थे। अतः आप अजमेर से नसीराबाद, विजयनगर, गुलाबपुरा, भीलवाड़ा, चित्तौडगढ़, निम्बाहेडा, नीमच, मन्दसौर और जावरा आदि क्षेत्रों में विचरते हुए, रतलाम शहर में पधार गये। इसके पहले, जब कि आप मन्दसौर पधारे थे, तब वहाँ रतलाम के श्री संघ की ओर से आगामी चातुर्मास गुरुवर्य श्री नन्दलाल जी महाराज की सेवा में रतलाम में ही करने के लिये एक आग्रह भरा बिनंतीपत्र मन्दसौर संघ के पास पहुँच चुका था, और अब फिर चरित्र-नायकजी ने रतलाम पधारते ही वहाँ के श्री संघ की पुनः अत्यन्त आग्रह भरी विनंती देख कर श्री गुरुदेव की आज्ञा से सं० १९९० का चातुर्मास रतलाम में किया। इस चातुर्मास में यहाँ के श्री संघ में परस्पर अच्छा संगठन रहा। चरित्रनायकजी के उपदेश से धर्म-वृद्धि ज्ञान प्रभावना और तपस्यादि भी यथेष्ठ हुई। सर्व श्री धूलचन्दजी भण्डारी, चांदमलजी गांधी, लक्ष्मीचन्द्रजी मुणोत, वर्धमानजी पीतलिया, बाल-

तत्र स्थले सम्भृतपूरुषाणां, शब्दं समाकर्ण्यपुराङ्गनानाम् ।
आचार्यवीक्षा तृषिते क्षणानामेवं विधं चेष्टितमाविरास ॥
अट्टालमारोहति किञ्च काल विलोल पाद ललनासमूहे ।
पाणिन्धमत्वेन बभूव भङ्गः परस्परं काञ्चनकाङ्कणानाम् ॥

चन्दजी श्रीश्रीमाल, केशरीमलजी गादिया, जीतमलजी बोथरा, नन्दरामजी चौथमलजी श्रीश्रीमाल, चाँदमलजी बोहरा, जीतमलजी खाणोदिया प्रभृति संघ के अग्रगण्य श्रावकों एवं श्राविकाओं ने श्रीचरित्रनायकजी की अत्यधिक सेवा-भक्ति करके ज्ञान-सम्पादन किया।

पाठको ! हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी म० को अजमेर में सर्वानुमति से अखिल भारतवर्षीय पूज्यपाद मुनि-मण्डल द्वारा पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी म० की सम्प्रदाय के लिये उपाध्याय का पद मिला था। तथापि आपको उसका किंचित् भी अभिमान नहीं था।

पाठको ! समय की विचित्रता के कारण कार्य कुछ का कुछ बन जाया करता है। जगत्-विख्यात प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज सा० की सम्प्रदाय में किसी कारणवश दो दल हो गये थे। उन दोनों दलों में परस्पर एक्यता स्थापित करने के लिये कई स्थानों पर कई बार प्रयत्न किया गया। किन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। तब शास्त्र-विशारद बाल-ब्रह्मचारी श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्री मन्नालालजी म० के सद् प्रयास से अजमेर में बृहत् साधु-सम्मेलन के समय इस पारस्परिक वैमनस्य का अन्त हो गया था। अर्थात् पूज्य श्री मन्नालालजी म० और पूज्य श्री जवाहिरलालजी म० इन दोनों पूज्यों के साधुओं में परस्पर सुलह हो गई थी। और दोनों पक्षों के मुनियों में परस्पर वन्दना व्यवहार और आहार-पानी आदि चालू हो गया था। इस प्रकार पूज्य श्री मन्नालालजी म० ने सम्प कायम करके अखण्ड

नार्योऽप्युः स्फाटिककुट्टमाग्रसुवर्णवातायनसन्निविष्टाः ।
आकाशमार्गेण मुनीन्द्रवीक्षा गता इव स्वर्वनिता विमानैः ।
आस्याय हास्या नयनेपुलास्या सिन्दूरबिन्दूदयशोभिभाला
तुस्ताव स्त्रीजनपङ्क्तिरार्यं पूज्यं क्षमासागरकं मुनीशम् ॥

---

यश प्राप्त कर लिया था। अजमेर के मुनि-सम्मेलन का कार्य-क्रम पूर्ण होने के पश्चात् आप मुनिवरों के कन्धों, डोली में बैठ कर ब्यावर शहर में पधारे। यहाँ पर आपके शरीर में यकायक असाता-वेदनी कर्म का उदय हुआ। इसके उपस्थित होने के पूर्व ही आपने अपने कर्त्तव्यों की आलोचना योग्य मुनिवरों के सम्मुख कर ली थी। प्रमुख मुनिवरों ने अब अवसर देख कर आपको समाधिसंथारा (आजीवन अनशन व्रत) करवा दिया था। थोड़ी ही देर के पश्चात् शान्ति पूर्वक श्वासोश्वास लेकर आपने अपने इस भौतिक शरीर को सदा के लिये छोड़ दिया। और आपकी आत्मा दिव्य गति को प्राप्त हो गई। अर्थात् आषाढ कृष्णा द्वादशी के दिन आपका स्वर्गवास ब्यावर में हो गया।

इधर रतलाम में हमारे चरित्रनायक श्री खूबचन्दजी म० ने चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् विहार नहीं किया। और आप गुरुवर्य श्री जी की सेवा में रतलाम ही में विराजमान रहे, आपको स्वप्न में भी कभी यह विचार उत्पन्न नहीं होता था कि मुझे भी आचार्य-पद मिले तो अत्युत्तम हो। परन्तु भविष्य में क्या-क्या होने वाला है! यह तो आगम-विहारी(ज्ञानी)के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता है। अस्तु

फाल्गुन शुक्ला २ का सुखद मंगल-प्रभात था। चरित्रनायकजी प्रति-लेखन गुरु-वन्दन स्वाध्याय आदि करके शौच-निवृत्ति के लिये

भावार्थ—आचार्य-पदारोहण समारोह-जनित, गगन-भेदी जय-घोष को श्रवण करके नगर की महिलाएँ आचार्य श्री के दर्शनार्थ उत्कण्ठित हो उठीं। और वे दर्शन की चेष्टा करने लगीं। उन झरोखों में बैठी हुई महिलाओं के सुवर्ण-कंकणों के पारस्परिक-संघर्ष से रम्य शब्द उत्पन्न हो रहा था। उस समय वे सौभाग्य-सिन्दुर-बिन्दु से सुशोभित हँस–मुखी महिलाएँ मुनिनाथ की स्तुति में लीन थीं।

---

शहर से बाहर कुछ दूर पधारे थे। जब आप सदैव की भाँति शौचादि से निवृत्त हो स्थान पर पधारे, तो वहाँ पर आप क्या देखते हैं, कि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं से व्याख्यान का यह विशाल स्थान खचाखच भरा हुआ है। आप श्री को बाहर से पधारते देख कर समस्त उपस्थित चतुर्विध श्री संघ ने खड़े होकर स्वागत सत्कार और विनय पूर्वक आपके प्रति बहुमान प्रकट किया। अचानक इतनी विशाल मानव-सभा देख कर आप अपने हृदय में विचार करने लगे, कि आज गुरुवर्य श्री के समीप चतुर्विध श्री संघ का यह बृहत् समूह क्यों एकत्रित हुआ है। इस महत्व पूर्ण कार्य का गुप्त भेद आपको किसी ने भी नहीं बताया था। सदैव की भाँति व्याख्यान देने के लिये आप अपने पट्टस्थ आसन पर आकर विराजमान हुए। उस समय आपके पूजनीय गुरु-वर्य श्री ने व्याख्यान में पधार कर अपने पवित्र मुखारविन्द से फरमाया कि " हे देवानुप्रिय! मैं आज चतुर्विध श्री संघ की सर्वानुमति से संघ के समक्ष श्री खूबचन्दजी म० को अपने हाथों से आचार्य-पद द्वारा अलंकृत करते हुए पंचम पट्टस्थ स्वर्गीय पूज्य श्री मन्नालालजी म० के स्थान पर इन्हें षष्टम पट्टाधिकारी घोषित करता हूँ। आज से चतुर्विध श्री संघ आपकी आज्ञा में रहेगा। " स्थविर मुनि श्री के इस वक्तव्य

झरोखों में अपने-अपने आसन पर बैठी हुई। वे समस्त सुन्दर महिलाएँ ऐसी शोभायमान् हो रहीं थीं। जैसे मुनींद्र के दर्शनार्थ विमानमें बैठ कर देवाङ्गनाएँ आ रही हों। उन महिलाओंके द्वारा स्तुत्य मुनि-मण्डल, जो कि परम शांति पूर्वक विराजमान् था, अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहा था ॥३३६-३४०

---

को श्रवण करके चरित्रनायकजी हाथ जोड़ कर चतुर्विध श्री संघ के समक्ष श्री गुरु महाराज से निवेदन करने लगे, कि " मैं क्रोधी, मानी, दम्भी, लोभी, प्रमादी और अवनीतादि अनेक अवगुणों का भण्डार हूँ मैं अल्पज्ञ 'आचार्य-पद' के योग्य कैसे हो सकता हूँ ? मैं तो सभी सन्तों का दास हूँ। और सब से छोटा हूँ। कृपया मुझ पर इतना भार न लादें। मेरी शारीरिक परिस्थिति भी विशेष ज़ोरदार नहीं है। हे स्थविर भगवान्! सम्प्रदाय में बड़े-बड़े योग्य मुनिवर आपकी आज्ञा में इस समय विद्यमान् हैं। अतः साम्प्रदायिक उन्नति के लिये यह महान् उत्तरदायित्व पूर्ण आचार्य-पद उन्हीं योग्य मुनिवरों को आप प्रदान करेंगे। ऐसा मैं हृदय से चाहता हूँ।"

इस प्रकार चरित्रनायकजी के निराभिमानता पूर्ण वचनों को श्रवण करके स्थविर-पद-विभूषित पण्डितमु नि श्री नन्दलालजी म० ने फ़रमाया, कि 'हां. इस पद के योग्य तो कई मुनि हैं। पर इस समय मैंने आप ही को "आचार्य-पद" के लिये चुना है। इस लिये यह 'आचार्यपद' सर्वानुमति से आज आपको ही समर्पण करता हूँ।" इस प्रकार सम्प्रदाय में सर्व ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पं०मुनि श्री नन्दलाल जी म० सा० ने स्थविर-पद की हैसियत से जैनागमों के नियमानुसार परम शान्त. त्यागमूर्ति और विद्वान् मुनि श्री खूबचन्दजी म० को "श्री'

सत्सङ्घस्य चतुर्विधस्य सविधे धृत्वा समारोहणम्-
आचार्यस्य पवित्रमञ्जुकरतः प्रादादपट्टैरुदम् ।
श्रीमज्जैनदिवाकरस्य पदवीं श्रीचौथमल्लाय च
पुण्यैरेव विलभ्यते सुकृतिभीरम्यं पदं निर्मलम् ॥२४३॥
युवाचार्यशुभपदतश्छगनलालजी संभूतोभूम्याम्,

---

मज्जैनाचार्य" के पद से सम्बोधित किये । तब चतुर्विध संघ ने तत्काल ही खड़े होकर इस आचार्यपद का समर्थन और अनुमोदन किया । तथा शासनाधीश भगवान् श्री महावीर प्रभु की जय, जैनाचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज की जय आदि गगन-भेदी जय-घोषों से आकाश मण्डल को गूंजा दिया ।

प्रिय पाठको ! हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज सा० बड़े ही सद्गुण सम्पन्न, शुद्ध क्रियापात्र और वैराग्य के पुंज हैं । आपने लगभग पच्चीस-तीस वर्षों तक लगातार प्रतिवर्ष कम-से-कम ७२ व्रत (उपवास) किये हैं । और कई वर्षों तक आपने प्रतिदिन चार-चार पहर तक दिन और रात्रि में मौन धारण किया है । आप सुखे समाधे प्रतिदिन सूत्रों की कम-से-कम २५० ढाई सौ गाथाओं का स्वाध्याय करते हैं । आपने एक या दो वस्तुओं के अतिरिक्त हलवाइयों के यहाँ की बनी हुई समस्त वस्तुओं का भी त्याग कर दिया है । इसके अतिरिक्त आपने अन्यान्य अनेक पदार्थों का खाना भी त्याग दिया है । सुदूर क्षेत्रों में जहाँ-जहाँ कि आपके आचार्य-पद प्राप्ति की शुभ सूचना पहुँची थी, वहाँ-वहाँ के श्री संघों ने अपने यहाँ बड़ा ही हर्षोत्सव मनाया । और उन्होंने बधाई के शुभ सन्देश भेजे ।

उपाध्यायपदभूपः सहसमलजी मुनीन्द्रवर्योऽभूत् ॥३४४॥
अलब्धगणिपदवीं यः प्यारेलालो योगनिष्ठसाधुः ।
सुप्रवर्तकविरुद प्राप मोतीलालः सन्नामा ॥३४५॥
एव प्रवर्तकोऽभूच्छ्रीमान् हजारीमलजो पूतात्मा ।
अविदत्सलाहकार विरुद श्रीकेशरिमल्ल मुनिः ॥ ३४६ ॥
आचार्यपदवी वेदितो मुनिखूबचन्द्रसुशान्तिभाक् ।

---

इस आचार्य पद की शुभ घोषणा के हर्षोपलक्ष में रतलाम श्री संघ द्वारा उपस्थित जनता में लड्डू बताशे की प्रभावना बाँटी गई। सेवकों को पगड़ियों का उपहार प्रदान किया गया। पूज्य श्री खूबचन्दजी म० सा० को आचार्य पद किस प्रकार और क्यों दिया गया इस सब विषय का उल्लेख श्रीयुवाचार्यादिपदोत्सव नामक पुस्तक में भली भांति किया गया है।

चरित्रनायकजी ने पूज्य पद पर प्रतिष्ठित होते ही सर्व प्रथम अपनी नेश्राय ( आज्ञा ) में विचरने वाले मुनिराजों एवं महासतियों के लिए नियमोपनियम निर्माण करने का आदेश अपने दक्ष, योग्य और विचारशील मुनिवरों को दिया। तदनुसार जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री० चौथमलजी म०आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुनियों के प्रयास से देश कालानुसार शीघ्र ही ऐसे नियमोपनियम तैयार हुए, कि जिनसे साम्प्रदायिक गौरव की दिन-प्रतिदिन अभिवृद्धि होती रहे।

तत्पश्चात् श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री खूबचन्द जी म० ने फरमाया, कि मैं यह चाहता हूं कि मेरे सामने स्वसम्प्रदाय के सभी मुनियों का सम्मेलन एक बार शीघ्र ही हो जाय। अतएव आपकी इस आज्ञानुसार शहर

जिन-दिवाकर इह चौथमलश्चारुवरवाणीमयुक् ॥
युवाचार्यपदसमलंकृतो, ध्यानोछगनलालजित् ।
उपाध्यायविरुदसमर्चितोमुनिसहसमल्लसुनियमगः ॥२४७॥

---

रतलाम में स्थविर पंडित मुनि श्री नंदलाल जी म० एवं आप श्री की सेवा में सम्प्रदाय के समस्त मुनि उपस्थित हुए। और वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में सम्मेलन हुआ अपनी सम्प्रदाय के समस्त उपस्थित मुनियों के समक्ष आचार्य श्री जी ने फरमाया, कि मेरी वृद्धावस्था है अतएव आप मुनिवरों की सेवा ( देख भाल ) करने के निमित्त मैं अपनी उपस्थिति में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देना चाहता हूं। आप सर्व मुनिगण इस पद के योग्य मुनिवर को ढूँढ़ कर उनका नाम प्रकट करें। इसी प्रकार उपाध्याय, गणी और प्रवर्त्तक पद के लिए भी आप नाम प्रकट करें। तब आचार्य श्री की आज्ञा से और चतुर्विध संघ की सर्वानुमति से प्रसिद्धवक्ता पं०मुनि श्री चौथमलजी म० को जैन-दिवाकर, पंडित मुनि श्री छगनलाल जी म० को युवाचार्य, पंडित मुनि श्री सहस्रमलजी महाराज को उपाध्याय पंडित मुनि श्री प्यारचन्द जी म० को गणि. तपस्वी श्री मोतीलाल जी म० और पंडित मुनि श्री हजारीमल जी म० को प्रवर्त्तक तथा पंडित मुनि श्री केशरीमल जी महाराज को सलाहकारक के पद से विभूषित किया जाने का पूर्ण निश्चय हुआ। इस शुभ समाचार के पहुँचते ही अनेक क्षेत्र जैसे—रामपुरा, उदयपुर, मन्दसौर, बड़ी सादड़ी, महागढ़, जावरा आदि आदि स्थानों के संघों की ओर से इन उपरोक्त पदों के प्रदान करने की क्रिया का महोत्सव अपने अपने क्षेत्रों में मनाने के लिए पूज्य श्री के चरणों में विनतियां आने लगी। अन्त में अत्यन्त आग्रह के कारण उपरोक्त पदोत्सव के कार्यक्रम को सम्पादन करने का सौभाग्य मंद-

उपाध्यायपद्भूषः सहसमलजी मुनीन्द्रवर्योऽभूत् ॥३४४॥
अलब्धगणिपदवीं यः प्यारेलालो योगनिष्ठसाधुः ।
सुप्रवर्तकविरुद् प्राप मोतीलालः सन्नामा ॥३४५॥
एव प्रवर्तकोऽभूं च्छ्रीमान् हजारीमलजो पूतात्मा ।
अविदत्सलाहकारविरुद श्रीकेशरिमल्ल मुनिः ॥ ३४६ ॥
आचार्यपदवी वेदितो मुनिखूबचन्द्रसुशान्तिभाक् ।

---

इस आचार्य पद की शुभ घोषणा के हर्षोपलक्ष में रतलाम श्री संघ द्वारा उपस्थित जनता में लड्डू बताशे की प्रभावना बाँटी गई। सेवकों को पगड़ियों का उपहार प्रदान किया गया। पूज्य श्री खूबचन्दजी म० सा० को आचार्य पद किस प्रकार और क्यों दिया गया इस सब विषय का उल्लेख श्रीयुवाचार्यादिपदोत्सव नामक पुस्तक में भली भांति किया गया है।

चरित्रनायकजी ने पूज्य पद पर प्रतिष्ठित होते ही सर्व प्रथम अपनी नेश्राय ( आज्ञा ) में विचरने वाले मुनिराजों एवं महासतियों के लिए नियमोपनियम निर्माण करने का आदेश अपने दक्ष, योग्य और विचारशील मुनिवरों को दिया। तदनुसार जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री० चौथमलजी म०आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुनियों के प्रयास से देश कालानुसार शीघ्र ही ऐसे नियमोपनियम तैयार हुए, कि जिनसे साम्प्रदायिक गौरव की दिन-प्रतिदिन अभिवृद्धि होती रहे।

तत्पश्चात् श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री खूबचन्द जी म० ने फरमाया, कि मैं यह चाहता हूं कि मेरे सामने स्वसम्प्रदाय के सभी मुनियों का सम्मेलन एक बार शीघ्र ही हो जाय। अतएव आपकी इस आज्ञानुसार शहर

जिन-दिवाकर इह चौथमलश्चारुवरवाणीप्रयुक् ॥
युवाचार्यपदसमलंकृतो ख्यानोऽगनलालजित् ।
उपाध्यायविरुदसमर्चितोमुनिसहस्रमल्लमुनियमगः ॥२४७॥

---

रतलाम में स्थविर पंडित मुनि श्री नंदलाल जी म० एवं आप श्री की सेवा में सम्प्रदाय के समस्त मुनि उपस्थित हुए। और वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में सम्मेलन हुआ अपनी सम्प्रदाय के समस्त उपस्थित मुनियों के समक्ष आचार्य श्री जी ने फरमाया, कि मेरी वृद्धावस्था है अतएव आप मुनिवरों की सेवा ( देख भाल ) करने के निमित्त मैं अपनी उपस्थिति में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देना चाहता हूं। आप सर्व मुनिगण इस पद के योग्य मुनिवर को ढूँढ़ कर उनका नाम प्रकट करें। इसी प्रकार उपाध्याय, गणी और प्रवर्तक पद के लिए भी आप नाम प्रकट करें। तब आचार्य श्री की आज्ञा से और चतुर्विध संघ की सर्वानुमति से प्रसिद्धवक्ता पं०मुनि श्री चौथमलजी म० को जैन-दिवाकर, पंडित मुनि श्री छगनलाल जी म० को युवाचार्य, पंडित मुनि श्री सहस्रमलजी महाराज को उपाध्याय पंडित मुनि श्री प्यारचन्द जी म० को गणि, तपस्वी श्री मोतीलाल जी म० और पंडित मुनि श्री हजारीमल जी म० को प्रवर्तक तथा पंडित मुनि श्री केशरीमल जी महाराज को सलाहकारक के पद से विभूषित किया जाने का पूर्ण निश्चय हुआ। इस शुभ समाचार के पहुँचते ही अनेक क्षेत्र जैसे—रामपुरा, उदयपुर, मन्दसौर, बड़ी सादड़ी, महागढ़, जावरा आदि आदि स्थानों के संघों की ओर से इन उपरोक्त पदों के प्रदान करने की क्रिया का महोत्सव अपने अपने क्षेत्रों में मनाने के लिए पूज्य श्री के चरणों में विनतियां आने लगी। अन्त में अत्यन्त आग्रह के कारण उपरोक्त पदोत्सव के कार्यक्रम को सम्पादन करने का सौभाग्य मंद-

गणिसञ्ज्ञितोऽभूत्प्यारचन्द्रः प्रज्ञधारीडच्यो जैनैः ।
वृहत् प्रवर्तक इति मोतिलालो वर्तते मुनिपश्च यः ।
प्रवर्तकोहिहजारिमलजीहटितमतिरचलासुरसः ।
सलाहकारपदस्थितोमुनिकेशरिमल्लसुभर्ग भाक् ॥३४८॥

सौर नगर को ही प्राप्त हुआ । मन्दसौर श्री संघ ने आचार्य श्री के चरणों में रतलाम आकर आगामी चातुर्मास अपने यहाँ करने के लिये आग्रह पूर्वक नम्र निवेदन भी किया । तब स्थविर-पद-विभूषित पं० रत्न मुनि श्री नन्दलालजी महाराज सा० ने भी मन्दसौर संघ के पूर्णतः आग्रह को देख कर आचार्य श्री जी से फरमाया, कि आपका चातुर्मास मन्दसौर ही में होना चाहिये । गुरुवर्य श्री जी की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके तथा संघ की विनंती पर ध्यान रखकर सं १९९१ का चातुर्मास हमारे चरित्रनायकजी ने मन्दसौर में करना ही निश्चय किया । और तदनुसार आप रतलाम से विहार कर जावरा पधारे । जावरा के श्री संघ द्वारा आपका बड़ा ही शानदार स्वागत हुआ । आप के शुभागमन के उपलक्ष में पंचायती नोकर, स्थानक के दारोगे ओर स्कूल के मास्टर को पगड़ियों का उपहार प्रदान किया गया । बतासों की प्रभावना बाँटी गई । जावरा में कुछ दिन विराज कर फिर आपने वहां से विहार किया । कलालिया, धोधर. जमरदलोदा, रेलदलोदा आदि ग्रामों में होते हुए आप मन्दसौर पधारे । श्री संघ ने आपका बड़े ही समारोह के साथ स्वागत किया । जामुन वाले विशाल जैन-भवन में आपने चातुर्मास किया । चातुर्मास में धर्म-वृद्धि एवं तपस्या बहुत हुई । बेला, तेला, चोला, पचोली. अठाइ, ग्यारह, पन्द्रह आदि

भावार्थ—उस समय चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्य श्री के कर कमलों द्वारा तत्ववेत्ता, सुदृढ़ ज्ञानी, योगनिष्ट, पवित्रात्मा, सुशील स्वभावी, शांति-स्वरूप शुद्धाचारी और तपस्वी प्रसिद्ध-वक्ता पंडित मुनि श्री चौथमल जी महाराज को 'जैन-दिवाकर' पद से विभूषित किये गये। इसी प्रकार मुनि श्री छगनलालजी म० को

---

तपस्या के कई थोक हुए। तपस्या और दया उपवास की पंचरंगियाँ हुईं। अन्यान्य शहरों और गांवों के स्त्री पुरुष आचार्य श्री के दर्शनार्थ आए। जैन धर्म की खूब ही प्रभावना हुई मन्दसौर का चातुर्मास सानंद समाप्त करके आपने रामपुरा की तर्फ विहार किया। क्योंकि वहाँ के श्री संघ की आग्रह भरी विनंती थी। अतः मलहारगढ़, नारायणगढ़, महागढ़, मनासा, भाटखेड़ी, कंजार्डा और कुकड़ेश्वर आदि २ कई क्षेत्रों में अपनी पियूषधारा वाणी से भव्य प्राणियों के हृदय-प्रदेश को सिंचित करते हुए आपका शुभागमन रामपुरा में हुआ। उस दिन आपके स्वागतार्थ लगभग तीन-चार मील तक संघ के प्रायः छोटे-बड़े आबालवृद्ध नर-नारियों का समूह सम्मुख पहुँचा था। ग्राम में पहुँचते पहुँचते जनता एक विशाल जुलूस के रुप में एकत्रित हो गई थी। यह जुलूस मुख्य-मुख्य मार्गों से होता हुआ पंचायती भवन में समाप्त हुआ था। पूज्य श्री इसी पंचायती भवन में विराजमान् हुए। प्रति दिन आपके अमृतोपम सदुपदेश को श्रवण करने के लिये जैन-जैनेतरों की संख्या

गणिसञ्ज्ञितोऽभूत्प्यारचन्द्रः प्रज्ञधीरीडचो जेनैः।
वृहत् प्रवर्तक इति मोतिलालो वर्तते मुनिपश्च यः।
प्रवर्तकोहिहजारिमलजीहटितमतिरचलासुरसः।
सलाहकारपदस्थितोमुनिकेशरिमल्लसुभर्ग भाक् ॥३४८॥

सौर नगर को ही प्राप्त हुआ। मन्दसौर श्री संघ ने आचार्य श्री के चरणों में रतलाम आकर आगामी चातुर्मास अपने यहाँ करने के लिये आग्रह पूर्वक नम्र निवेदन भी किया। तब स्थविर-पद-विभूषित पं० रत्न मुनि श्री नन्दलालजी महाराज सा० ने भी मन्दसौर संघ के पूर्णत: आग्रह को देख कर आचार्य श्री जी से फरमाया, कि आपका चातुर्मास मन्दसौर ही में होना चाहिये। गुरुवर्य श्री जी की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके तथा संघ की विनंती पर ध्यान रखकर सं १९९१ का चातुर्मास हमारे चरित्रनायकजी ने मन्दसौर में करना ही निश्चय किया। और तदनुसार आप रतलाम से विहार कर जावरा पधारे। जावरा के श्री संघ द्वारा आपका बड़ा ही शानदार स्वागत हुआ। आप के शुभागमन के उपलक्ष में पंचायती नोकर, स्थानक के दारोगे और स्कूल के मास्टर को पगड़ियों का उपहार प्रदान किया गया। बतासों की प्रभावना बाँटी गई। जावरा में कुछ दिन विराज कर फिर आपने वहां से विहार किया। कलालिया, धोधर, जमरदलोदा, रेलदलोदा आदि ग्रामों में होते हुए आप मन्दसौर पधारे। श्री संघ ने आपका बड़े ही समारोह के साथ स्वागत किया। जामुन वाले विशाल जैन-भवन में आपने चातुर्मास किया। चातुर्मास में धर्म-वृद्धि एवं तपस्या बहुत हुई। बेला, तेला, चोला, पचोला, अठाइ, ग्यारह, पन्द्रह आदि

भावार्थ—उस समय चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्य श्री के कर कमलों द्वारा तत्ववेत्ता, सुदृढ़ ज्ञानी, योगनिष्ठ, पवित्रात्मा, सुशील स्वभावी, शांति-स्वरूप शुद्धाचारी और तपस्वी प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री चोथमल जी महाराज का 'जैन-दिवाकर' पद से विभूषित किये गये। इसी प्रकार मुनि श्री छगनलालजी म० को

---

तपस्या के कई थोक हुए। तपस्या और दया उपवास की पंचरंगियाँ हुई। अन्यान्य शहरों और गांवों के स्त्री पुरुष आचार्य श्री के दर्शनार्थ आए। जैन धर्म की खूब ही प्रभावना हुई मन्दसौर का चातुर्मास सानंद समाप्त करके आपने रामपुरा की तर्फ विहार किया। क्योंकि वहाँ के श्री संघ की आग्रह भरी विनंती थी। अतः मल्हारगढ़, नारायणगढ़, महागढ़, मनासा, भाटखेड़ी, कंकाड़ी और कुकड़ेश्वर आदि २ कई क्षेत्रों में अपनी पियूषधारा वाणी से भव्य प्राणियों के हृदय-प्रदेश को सिंचित करते हुए आपका शुभागमन रामपुरा में हुआ। उस दिन आपके स्वागतार्थ लगभग तीन-चार मील तक संघ के प्रायः छोटे-बड़े आबालवृद्ध नर-नारियों का समूह सम्मुख पहुँचा था। ग्राम में पहुँचते पहुँचते जनता एक विशाल जुलूस के रूप में एकत्रित हो गई थी। यह जुलूस मुख्य-मुख्य मार्गों से होता हुआ पंचायती भवन में समाप्त हुआ था। पूज्य श्री इसी पंचायती भवन में विराजमान् हुए। प्रति दिन आपके अमृतोपम सदुपदेश को श्रवण करने के लिये जैन-जैनेतरों की संख्या उमड़-उमड़ कर आती थी। अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान हुए। वहाँ पर संजीत का श्री संघ, श्री चरित्रनायकजी के चरणों में उपस्थित हुआ। और उसने अपने क्षेत्रों में पधारने की आपसे आग्रह पूर्वक विनंती की तब दयालु आचार्य श्री जी ने संजीत संघ की विनंती को

युवाचार्य, मुनि श्री सहस्रमल जी म० को उपाध्याय, मुनि श्री प्यारचन्द जी म० को गणि, मुनि श्री मोतीलाल जी म० को बड़े प्रवर्तक, मुनि श्री हजारीमल जी म० को छोटे प्रवर्तक और मुनि श्री केशरीमल जी महाराज को सलाहकारक के पद से अलंकृत किये गये।

**श्रीहुक्मिचन्द्रेति पवित्रगच्छे तथा मनालालयतीन्द्रपाटे।**
**विभूषयन्तेऽघतपोऽङ्शुभिर्येकुर्वन्तिविध्वस्तमथान्धकारम्३४६**
**वादीभपञ्चाननभव्यमूर्तिर्दिगन्तदेवार्चितशुभ्रकीर्तिः।**
**जिनेन्द्रवाणीकुमुदस्य चन्द्रः संदृश्यतेयोगपखूबचन्द्रः॥३५०॥**

---

स्वीकृत करके उधर विहार किया। संजीत श्री संघ का उत्साह भी बड़ा ही प्रसंशनीय था। स्वयंसेवक गण हाथ में जैन सभा का झंडा लेकर तीन-चार माइल तक पूज्य श्री की पेशवाई में उपस्थित हुए। और बड़े ही शानदार स्वागत सहित पूज्य श्री का पदार्पण जैन भवन में करवाया प्रति दिन सार्वजनिक व्याख्यान होते थे। जैन और जैनेतरों की उपस्थिति अत्यधिक होती थी। तहसीलदार सा०, कानूगो सा०, चीफ सा० और डाक्टर सा० आदि बड़े-बड़े राजकर्मचारी एवं गाँव के प्रतिष्ठित सज्जन गण भी प्रति दिन व्याख्यान में भाग लेते थे। आचार्य श्री का व्याख्यान प्रति दिन भिन्न-भिन्न विषयों पर जैसे-मनुष्य कर्त्तव्य, मनुष्य जन्म की दुर्लभता, कुव्यसन-त्याग, कर्त्तव्य परायणता, धर्मावलम्बी बनो, आदि-आदि विषयों पर बड़े ही प्रभावशाली होते थे। आप श्री के इन असरकारक सदुपदेशों के प्रभाव से अनेकों स्त्री पुरुषों ने रात्रि-भोजन, अनछाना पानी, कंद-मूल एवं हरी, दुर्व्यसन आदि का त्याग किया। यहां से विहार कर आप

पूज्यं स्वदेशे भवतीहराज्यं ज्ञानं त्रिलोकेऽपिसदर्चनीयम् ।
ज्ञानं विवेकायमदायराज्यं ततो न ते तुल्यगुणे भवेताम् ॥२५१

शक्योवशीकर्तुमिभोऽतिमत्तः सिंहःफणीन्द्रःकुपितोनरेन्द्रः ।
ज्ञानेनहीनोनपुनःकथचिदित्यस्य दूरे नभवन्ति सन्तः ।।२५२॥

परोपदेशं स्वहितोपकारं ज्ञानेन देही वितनोति लोके ।
जहाति दोषं श्रयते गुणश्च ज्ञानं जनैस्तेन समर्चनीयम् ॥२५३

भावार्थ— प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० के गच्छ में पूज्य श्री मन्नालाल जी म० के मन्त्र-

---

आंतरी और नारायणगढ़ होते हुए मंदसौर पधारे। मंदसौर में युवाचार्यादि पदोत्सव मनाने की बड़े ही ज़ोरों से तैयारियाँ हो रही थी । कार्य को सुचारु रूप से संचालन करने के लिए छोटी-बड़ी कई कमेटियाँ नियुक्त की गई थी । श्री संघ की ओर से आचार्य श्री के चरणों में अपने मुनि-मण्डल सहित मन्दसौर पधारने की आग्रह भरी विनती कई बार आचुकी थी । अतः आचार्य श्री जी एवं प्रसिद्ध वक्ता जी आदि प्रायः साम्प्रदायिक सभी साधु साध्वियों ने पधारने की कृपा की थी । इस सम्प्रदाय के अतिरिक्त श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री अमरसिंह जी म० की सतियाँ जी म० श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज की सतियाँ जी म० और कोटा सम्प्रदाय की सतियां जी म० आदि कुल १०१ साधु-साध्विजी म० उस महोत्सव के शुभ प्रसंग पर उपस्थित हुए थे। माघ शुक्ला त्रयोदशी को चतुर्विध संघ के समक्ष पदारोहण का कार्य-क्रम सानन्द सम्पन्न हुआ । महोत्सव सम्बन्धी विशेष वर्णन 'युवाचार्यादि पदोत्सव' में पढ़िये ।

दानुयायी जितने भी सन्त विद्यमान् हैं। वे सब अपने तप रूप सूर्य की प्रखर किरणों द्वारा पापान्धकार का सर्वनाश कर रहे हैं ।।३४६।। हस्ती रूपी विवादियों के लिए सिहके समान,दिग्दिगन्त-व्यापी कीर्ति के संमूह, मुनि श्री खूबचन्द्र जी महाराज भगवान् महावीर प्रभु की निर्वद्य वाणी रूपी कुमोदिनी के लिए चन्द्र की तुलना को धारण करते हैं ।।३५०।। राजा तो केवल अपने देश में ही पूजनीय माना जाता है। किंतु ज्ञानी पुरुष तो त्रिलोक-पूज्य हैं। ज्ञान से विवेक उत्पन्न होता है। और राज्य से मद। इसलिए राज्य और ज्ञान, दोनों की परस्पर समानता किसी भी प्रकार नहीं हो सकती है ३५१ ज्ञान के बल से मदोन्मत्त हाथी, सिंह, साँप, और क्रोधी राजा भी वशीभूत हो जाते हैं। यही कारण है, कि ज्ञानी और विवेकी पुरुषों का परस्पर प्रेम पूर्वक सम्मेलन होता रहा है। अतएव जो सन्त पुरुष होते हैं। वे सदैव विवेकसंयुक्त ज्ञान से शोभायमान रहते हैं ।।३५२।। ज्ञान से ही मनुष्य परोपकार, परोपदेश और आत्म-कल्याण कर सकता है। इस ज्ञान ही के बल से मनुष्य दोषों का परित्याग करके सद्गुणों को ग्रहण करता है। यही कारण है, कि ज्ञानी पुरुष जगत् के सभी प्राणियों द्वारा पूजनीय माने गये हैं ।।३५३।।

---



श्री मान् धर्म-प्रेमी लाला अमानतरायजी के सुपुत्र
उत्साही युवक श्री निरंजन सिंह जी जैन,
कटराधूलियां चान्दनी चौक देहली।

# षष्ठम परिच्छेद

## चातुर्मास और धर्म प्रचार

महे निवृ े विजहारसोऽयं देशाननेकान् वचसा पुनानः।
जैनैर्जनैर्भावसुभक्तिपूर्णैः पूर्णं शुभं तं करजू प्रपेदे ॥२५४॥
उपवास तत्रैव मुनीशवर्यः पञ्चोत्तरं विंशति तां दिनानि।
हित्वाविलापं विसह्यपीडां महाज्वरार्तःकृतकर्मयोगान्॥२५५॥
शान्ति प्राप्य मुनिरुत्सवं समतनीद्धर्मोपदेशामृतैः,
प्रायाद्रत्नपुरीं मुनीन्द्रतिलकः श्रीकजु तोऽसौ ततः।
प्रानन्दिष्टपवित्रपादकमलं श्रीनन्दलालस्य च,
यद्भक्त्या भुविवन्यते मुनिवरोऽयं खूबचन्द्रोजनैः ॥२५६॥
ब्यावरनयाशहरमैत्मालव्यं मेवाड़ पोपयित्वा।
खूबचन्द्र आचार्योजिनवरसुगिराऽमहत्सर्वजनैः ॥२५७॥

भावार्थ—युवाचार्यादि पदोत्सव सानंद सम्पन्न हुआ। आचार्य श्री ने विहार किया। अमलावद, करना खेड़ी और नन्दावता आदि छोटे छोटे क्षेत्रों को पावन करते हुए, आप करजू पधारे ॥२५४॥ वहां पर स्थानकवासी भाइयों के लगभग ३० घर हैं। वहां पर प्रतिदिन प्रातःकाल आपका प्रवचन और दोपहर तथा रात्रि को अन्य मुनियों के व्याख्यान होते थे। चरित्रनायकजी

महाराज जब यहां से विहार करने की शीघ्रता करने लगे तो एक दिन अकस्मात् आपको १०३ डिग्री तक ज्वर हो आया। ऐसी स्थिति में भी आप साहसपूर्वक शांतिनाथ भगवान् का स्मरण करते हुए कर्म प्रकृति के भेद पर विचार करते रहे। ज्वर-जनित विशेष कष्ट के कारण आपको वहां पच्चीस दिन तक ठहरना पड़ा। करज् के नर-नारी बड़े ही भक्त और सेवाभावी थे। उन्होंने हर प्रकार से आचार्य श्री की बड़ी ही सेवाभक्ति की। दया, दान, व्रत और पच्चक्खाणादि भी बहुत हुए। धर्म-ध्यान और भक्ति-भावना उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती गई। कुछ दिनों के पश्चात् आचार्य श्री के शरीर में शांति हुई। करज् से विहार कर के आप गुरुवर्य श्री नंदलालजी म० की सेवा में शहर रतलाम पधारे। यहां पधारते ही आपके चरणों में अनेक शहरों व गांवों के श्री संघों की ओर से अपने-अपने शहर में चतुर्मास करने के सम्बन्ध में विनंतियां आने लगी। इन सब विनंतियों में से ब्यावर शहर के श्री संघ की विनंती बड़ी ही आग्रह पूर्ण और चिरकालीन थी। अतः सं० १६६२ के वर्ष का चातुर्मास आपने ब्यावर में किया ॥३५५-५६-५७॥

तत्र स्थले कुन्दनमल्लसुनुः श्रेष्टोऽङ्घिंजापूजितलालचन्द्रः।
अतिष्ठिपत्तस्यसुवाटिकायां पश्चादवात्सीच्छुचिकुन्दसञ्ज्ञे॥३५८

उपोष्यशास्त्राविधदिनानि तत्र प्रेम्णा छबालालतपः प्रभावी।
पक्काम्बुपानाश्रयतो जिनेन्द्रपादाब्जभृङ्गसमतीतयच्च ॥३५९॥

मेवाड़देशान्तर मांगरोलग्रामस्थितः श्रीयुत दीपचन्द्रः ।
स्वषोडशाब्दे वयसि प्रभावैर्दीक्षामपर्चिष्टमहोत्सवेन॥३६०॥

भावार्थ—ब्यावर में प्रथम श्रीमान् सेठ कुंदनलालजी सा० के सुपुत्र श्री लालचंद जी सा० के बगीचे में कुछ समय व्यतीत करके आप शहर के एक विशाल भव्य भवन "कुंदन-भवन" में संवत् १९९२ का चातुर्मास व्यतीत करने के लिए विराजमान हुए ॥३५८॥ चातुर्मास में धर्म-ध्यान एवं तपश्चर्या अच्छी हुई । तपस्वी श्री छब्बालालजी म० ने गर्म जल के आधार से ४६ दिन की तपस्या की । जिसकी पूर्ति पर यथेष्ट धर्मोद्योत हुआ ॥३५९॥ यहां पर मेवाड़ देशान्तर्गत मांगरोल ग्राम निवासी श्री दीपचन्द्रजी ने अपनी सोलह वर्ष की अवस्था में परम वैराग्य-भावना से दीक्षा ग्रहण की ॥३६०॥

काये तदा तत्र मुनेर्बभूव दौर्बल्यतः शीतग्रिश्म हेतोः ।
ज्वरोमहान्किन्तुसुधर्मभावस्तस्थौजनान्बोधमलंददान॥३६१
येषां बभूवुर्जिनपूजभावास्तान्द्रा दशामून् जिनधर्मलीनान् ।
स्वसम्प्रदायस्थचरान्मुनीशोऽदीक्षिष्टतान्पञ्चदिनं वसित्वा॥

भावार्थ—चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् आपने मसूदा, रातांकोट, विजयनगर, गुलाबपुरा, हुर्डा, भिणाय, टांटोटी, सरवाड़, केकड़ी, जूनिया आदि अनेक छोटे-बड़े क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करते हुए मालपुरा ( जयपुर ) में पधारे। वहां आपके शरीर में

कमजोरी और सर्दी के कारण बुखार की शिकायत रहती थी। मालपुरा में स्थानकवासी ओसवालों के १२-१३ घर थे। परन्तु मुनि अभाव से प्रायः वे सब के सब घर मूर्तिपूजक बनने वाले थे। अतः परम दयालु चरित्रनायकजी महाराज ने वहां पर ५-६ रात्रि विराज कर उन सभी घर वालों को ज्ञान का बोध प्रदान किया। और उन्हें पुनः आर्य जैन धर्म की दीक्षा और शिक्षा दे कर कट्टर स्थानकवासी धर्म के अनुयायी बनाये। वहां पर सुबह शाम दोनों समय व्याख्यान होते थे। श्रोताओं की संख्या लगभग ५०० हो जाती थी ॥३६१-३६२॥

परीषहान ध्वनि सोढमानस्ततः प्रतस्थे जयपत्तनं सः।
रागैर्विशेषैर्ग्रसितस्त्वगत्या, तस्थौतदाभेषजसेवनाय ॥३६३॥
स्वस्थे प्रजाते यततेस्मचार्यं गन्तुं मुनीशोंजनसंघकेन।
पर्जन्यकालं व्यतितुं मुनीशः, संतुस्तुवे पूर्णविनीतभावैः३६४
समाप्य वर्षा समयं ततश्च स्वाशीर्वचासङ्घमवीवच्छम्।
भिणायदेशं शुचिभृत्पवित्वा, मालपुरमैत् जनि भद्रकारी३६५
तत्रस्थसंघस्तुतिभिः प्रसन्नः, प्रजन्यकालं जयपत्तने च।
शुभंस्व्यकार्षाद्वीयतितुं स्वशिष्यैः, शीलं सलीलं परिबोधनाय
नेत्रांक भूखण्डमहीमितान्ते पुर्यां नवायामजमेरसंघः।
प्रार्थां दधे स्वस्य पराये तं सः, वर्षाकृते पूर्णतया विनीतः ३६७

तदान्यगादीद्यदि मोलवं वै, यास्याम्यवश्यं नगरेऽजमेरे।
धर्मस्य वाक्यैः शुभतत्त्वपूर्णैः, संनन्दयामीतिवचोऽविचिन्तन
रुग्णोऽपि दौर्बल्ययुतोऽविचार्य,ग्रीष्माभितप्तं समयं न चिन्तन्
काठिन्यपूर्णे पथि संजगाहे, स्वकीयदत्तं वचनं विचिन्तन् ॥
धर्मोपदेशः भवतां सुधाया, सख्यं दधानः परितः सभायाम्
जभैयुतायां बहुभिः सदैव श्रीपाटशालीयगतं बभूव ॥३७०॥
मासैककल्पं जिनधर्मतत्त्वं दिशन्टिटोके जयपत्तनं तद्।
मार्गेऽनेकान्नगरान् भरिभिः सिञ्चन्स्व धर्माम्बुपयोमुचां सः॥

भावार्थ—वहां से विहार कर मार्ग में अनेक प्रकार के परिषहों को सहन करते हुए आप जयपुर श्री संघ के विशेष आग्रह से प्रेरित होकर जयपुर पधारे। वहां आपको मास-कल्प के दिनों से भी अधिक समय तक ठहरना पड़ा। क्योंकि आपके शरीर में बीमारी के कारण विशेष कमजोरी उत्पन्न हो गई थी। योग्य वैद्यों के औषधोपचार द्वारा आपका स्वास्थ्य जब ठीक हुआ तब आप वहां से विहार करने लगे, तो जयपुर श्री संघ ने आगामी चातुर्मास अपने ही यहां करने के संबंध में बड़ी ही आग्रह पूर्वक प्रार्थना आप से की। उधर देहली, टोंक, अलवर आदि क्षेत्रों की विनंतियां चातुर्मास के लिए आही रही थी। किन्तु आखिरकार जयपुर श्री संघ के भाग्योदय से पूज्य श्री ने संवत् १९९३ का चातुर्मास शहर जयपुर में करने की स्वीकृति

कमजोरी और सर्दी के कारण बुखार की शिकायत रहती थी। मालपुरा में स्थानकवासी ओसवालों के १२.१३ घर थे। परन्तु मुनि अभाव से प्रायः वे सब के सब घर मूर्तिपूजक बनने वाले थे। अतः परम दयालु चरित्रनायकजी महाराज ने वहां पर ५-६ रात्रि विराज कर उन सभी घर वालों को ज्ञान का बोध प्रदान किया। और उन्हें पुनः आर्य जैन धर्म की दीक्षा और शिक्षा दे कर कट्टर स्थानकवासी धर्म के अनुयायी बनाये। वहां पर सुबह शाम दोनों समय व्याख्यान होते थे। श्रोताओं की संख्या लगभग ५०० हो जाती थी ॥३६१-३६२॥

परीपहान ध्वांनि सोढमानस्ततः प्रतस्थे जयपत्तनं सः।
रागैर्विशेषैर्ग्रसितस्त्वगत्या, तस्थौतदाभेषजसेवनाय ॥३६३॥
स्वस्थे प्रजाते यततेस्मचार्यं गन्तुं मुनीशोजनसंघकेन।
पर्जन्यकालं व्यतितुं मुनीशः, संतुस्तुवे पूर्णविनीतभावैः३६४
समाप्य वर्षा समयं ततश्च स्वाशीर्वचासङ्गमवीवच्छम्।
भिणायदेशं शुचिभृत्पवित्वा, मालपुरमैत् जनि भद्रकारी३६५
तत्रस्थसंघस्तुतिभिः प्रसन्नः, प्रजन्यकालं जयपत्तने च।
शुभंस्व्यकार्षाद्वीयतितुं स्वशिष्यैः, शीलं सलीलं परिबोधनाय
नेत्रांक भूखण्डमहीमितान्ते पुर्यां नवायामजमेरसंघः।
प्रार्थां दधे स्वस्य परांय तं सः,वर्षाकृते पूर्णतया विनीतः ३६७

तदान्यगादीद्यदि मोलवं वै, यास्याम्यवश्यं नगरेऽजमेरं ।
धर्मस्य वाक्यैः शुभतत्त्वपूर्णैः, संनन्दयामीनिवचोविचिन्तन
रुग्णोऽपि दौर्बल्ययुतोऽपिचार्यँ,ग्रीष्माभितप्त समयं न चिन्तन्
काठिन्यपूर्णे पथि संजगाहे, स्वकीयदत्तं वचनं विचिन्तन् ॥
धर्मोपदेशः भवतां सुधाया, सख्यं दधानः परितः सभायाम्
जनैर्युतायां बहुभिः सदैव श्रीपाठशालीयगतं बभूव ॥३७०॥
मासैककल्पं जिनधर्मतत्त्वं दिशन्‌टिटोके जयपत्तनं तद् ।
मार्गेऽनेकान्नगरान् भरिभिः सिञ्चन्स्व धर्माम्बुपयोमुचां सः ॥

भावार्थ—वहां से विहार कर मार्ग में अनेक प्रकार के परिषहों को सहन करते हुए आप जयपुर श्री संघ के विशेष आग्रह से प्रेरित होकर जयपुर पधारे। वहां आपको मास-कल्प के दिनों से भी अधिक समय तक ठहरना पड़ा। क्योंकि आपके शरीर में बीमारी के कारण विशेष कमजोरी उत्पन्न हो गई थी। योग्य वैद्यों के औषधोपचार द्वारा आपका स्वास्थ्य जब ठीक हुआ तब आप वहां से विहार करने लगे, तो जयपुर श्री संघ ने आगामी चातुर्मास अपने ही यहां करने के संबंध में बड़ी ही आग्रह पूर्वक प्रार्थना आप से की। उधर देहली, टोंक, अलवर आदि क्षेत्रों की विनंतियां चातुर्मास के लिए आही रही थी। किन्तु आखिरकार जयपुर श्री संघ के भाग्योदय से पूज्य श्री ने संवत् १९९२ का चातुर्मास शहर जयपुर में करने की स्वीकृति

प्रदान कर दी। श्री चरित्रनायकजी महाराज का गत चातुर्मास ब्यावर में था। उस समय अजमेर के नर-नारियों ने दर्शनार्थ ब्यावर पहुँचकर आपकी सेवा में अजमेर पधारने की बहुत ही आग्रह भरी विनंति की थी। तब पूज्य श्री ने यह फरमाया था, कि "यदि मैं मालव देश की ओर प्रस्थान करूँगा तो अजमेर की भूमि के स्पर्श किये बिना उधर नहीं जाऊँगा।" अब संवत् १९९३ के चातुर्मास के लिए जब आपने जयपुर श्री संघ को स्वीकृति प्रदान करदी तो अब आपको फिर ख़याल हुआ, कि "मैंने अजमेर जाने का वचन वहां के निवासियों को दे रक्खा है। अतः चातुर्मास के पहले ही अपने इस वचन को निभा लेना ठीक है। पाठको! पंच महाव्रत धारी मुनियों के लिए शास्त्रों में नियमित आहार-विहार तथा भाषा की प्रमाणिकता रखने का विधान भगवान् ने फरमाया है। इसी विधान को लक्ष में रख कर हमारे चरित्रनायक जी ने अजमेर जाने का विचार प्रकट किया। तब जयपुर के श्री संघ ने आपकी सेवा में नम्र निवेदन किया, कि "गुरुदेव! आपका शरीर इस समय विशेष कमज़ोर है। तथा गर्मी भी विशेष पड़ने लगी है। तथा मार्ग भी कठिन है। अतः आप अपने इस ग्रीष्म कालीन उग्र विहार के विचार को स्थगित करने की कृपा कीज़िएगा।" श्री संघ के इस निवेदन को आपने सुन तो लिया। किंतु आपको अपने वचन-पालन का पूर्णतया ध्यान था। अतः आपने अपनी शारीरिक असमर्थता, ग्रीष्म कालीन आताप तथा मार्ग की कठिनाई को सहन करते हुए भी

अजमेर शहर की भूमि को पावन किया। वहां जैन पाठशाला में प्रतिदिन आपके व्याख्यान होते थे। श्रोता समाज की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। वहां पर लगभग एक मास ठहर कर आपने जनता को धर्म का मर्म समझाया। फिर वहां से विहार कर मदनगंज, किशनगढ़, दांतरी, परासोली तथा भिणाय देशान्तर्गत मसूदा आदि गांवों में निर्ग्रंथ वाणी का प्रवचन करते हुए संवत् १६६३ का चातुर्मास मनाने के लिए जयपुर पधार गये ॥३६३-७१॥

**गुणग्रहांकक्षितिवत्सरीयं, घनागमं श्रीजयपत्तनेऽस्मिन् ।**
**आचार्यवर्यश्च ततोऽतयिष्ट, दिनेदिने धर्मपयः प्रवाहैः॥३७२॥**

भावार्थ—जयपुर के चातुर्मास में धर्म प्रभावना बहुत ही अच्छी हुई। नर नारियों में तपस्या की पांच पंचरंगिया* और २१ अट्ठाइयां हुईं। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की विभिन्न तपस्याएँ हुईं। चारों मास बाहर गांव से आने वाले दर्शनार्थी स्त्री पुरुषों का तांता बंधा रहा ॥ ३७२ ॥

**मासे श्रावणिकेऽसिते विधुयुते घस्रे द्वितीये शुभे,**
**ध्यात्वा श्रीजिनपूतपादकमलं कालेऽपराह्णे तथा ।**

---

* उपवास, बेला, तेला, चोला और पंचोला इन पांच प्रकार की तपश्चर्याओं में से प्रत्येक तपश्चर्या को क्रमशः पांच-पांच व्यक्ति धारण करके तप व्रत में लीन हो जांय। इस प्रकार इन पच्चीसों व्यक्तियों द्वारा जो तप आराधना की जाती है। उसे पचरंगी तपस्या कहते हैं।

संथारासहितप्रसन्नमनसा प्रार्थ्यक्षमायाच नाम्,
धृत्वा दिव्यसमाधिमैद्यतिवरः श्रीनन्दलालोदिवम् ॥३७३॥
चन्द्रादित्य पुरन्दर क्षितिधर श्रीकण्ठ सौर्यादयः,
ये कीर्तिद्युतिकान्ति धी धनवल प्रख्यातपुण्योदयाः ।
स्वे स्वेतेऽपि कृतान्तदन्तकलिताः काले व्रजन्ति क्षयम्,
किञ्चान्यस्य कथेति चारुमतयो धर्मे मतिं धीयताम् ॥३७४॥
सुग्रीवांगद नीलमारुतसुतस्पष्टैः कृताराधनो,
रामो येन विनाशितस्त्रि भुवन प्रख्यात कीर्तिध्वजः ।
मृत्तोस्तस्य परेषु देहिषु कथा कास्तीति भो ज्ञायताम्,
कात्रास्थानयतोद्विपं हि शको, बिर्यायकः श्रोतसः ॥३७५॥

भावार्थ—इसी वर्ष रतलाम में श्रावण कृष्णा द्वितीया सोमवार के दिन सायंकाल के समय चरित्रनायकजी के गुरुजी वादी-मान-मर्दक पंडित मुनि श्री नंदलालजी महाराज ने श्री जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों में भक्तिपूर्वक संथारा धारण करते हुए अपना यह भौतिक शरीर त्याग दिया। आपके देहावसान के समाचार तार द्वारा जब चरित्रनायकजी के पास पहुँचे तो चरित्रनायक जी के हृदय में वज्राघात जैसा बड़ा ही दुःख हुआ। आपने अपने पूज्य गुरुदेव की अंतिम सेवा से यूँ वंचित रहने का तथा अचानक स्वर्गवास होने का बड़ा ही खेद प्रकट किया। और अपने शोक-संतप्त मुनि मण्डल से आपने कहा कि "मुनिराजो!

काल की गति बड़ी विचित्र है। चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, मानवेन्द्र, सौंदर्य सम्पन्न, प्रभावशाली, बुद्धिमान एवं धनवान् आदि किसी को भी यह कराल काल नहीं छोड़ता है। इसलिए ज्ञानवान् प्राणियों को धर्माराधना में अवश्य ही तत्पर होना चाहिए। सुग्रीव, अंगद, नील और हनुमान आदि योद्धाओं द्वारा सेवित प्रख्यात् कीर्ति श्री रामचन्द्रजी आदि बड़े-बड़े महापुरुषों को भी इस मृत्यु ने नहीं छोड़ा तो फिर औरों की तो बात ही क्या है? ॥ २७३-२७४-२७५ ॥

पथि पान्थ शरण यथा व्रजतो, भवति स्थितिरस्थितिरवेतरौ
जनताध्वनि जीवगणस्यतथा, जननमरणंचसदैवकुले॥२७६॥

भावार्थ—जैसे पथिकों की विश्रान्ति के लिए जिस वृक्ष के नीचे स्थिति होती है। उसी वृक्ष से गमन करना भी नियत है। इसी प्रकार इस संसार में जो प्राणी जन्म ग्रहण करता है वह मृत्यु को भी अवश्य ही प्राप्त करता है ॥ २७६ ॥

उदितः समयः श्रयतेऽस्तमयं, सकलाजलधिं समुपेतिनदी
सकलानिफलानिपतन्तितरोः, कृतकः सकलो लभतेविलयम्॥

भावार्थ—जिस प्रकार समय उदय होकर अस्त होता है। नदी वर्षा के जल से वृद्धि प्राप्त कर समुद्र में लीन हो जाती है। वृक्ष पर फल उत्पन्न हो कर समय पर गिर जाते हैं। उसी प्रकार यह आत्मा भी समय पर शरीर को ग्रहण एवं परित्याग करती रहती है ॥ २७७ ॥

इतितत्वीधयः परिचिन्त्यबुधाः,सकलस्यजनस्य विनश्वरताम्
न मनागपि चेतसि संदधते, शुचमङ्गयशः सुखनाशकरम् ३७८

भावार्थ—इसलिए सब पदार्थों की विनश्वरता को विचार कर के बुद्धिमान पुरुष इस भौतिक शरीर को क्षण भंगुर समझते हैं। और अङ्ग यश तथा सुख के नाश करने वाले शोक को अपने हृदय में नहीं आने देते हैं ॥ ३७८ ॥

परिहायशुचंकुरु धर्ममतिं, ननु धर्मसमाश्रयतो लभते ।
मनुजो रुचिर दिवि दिव्यपदं, पुनरागमनमरणंजयति ॥३७९॥

भावार्थ—अतएव शोक को त्याग कर धर्म में मन को लगाओ धर्म के आश्रय से मनुष्य रुचिर दिव्यपद को प्राप्त होता है॥३७९॥

गुरुशोकसमुद्रगतं सकलं, निज शिष्यगणश्च विबुध्यगिरा ।
परितुष्य जिनोक्तगिरासुधयाजनशान्ति मधान्ननुखूबमुनि ॥

भावार्थ—इस प्रकार हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज ने अपने गुरु-वियोग से शोकाकुल मुनियों एवं जन समुदाय को संतोष एवं शान्ति प्रदान की ॥ ३८० ॥

श्रीमान् नंदलालजी महाराज का संक्षिप्त परिचय ।

अस्तीन्दोरनृपालशासितमहो रम्यं सुवास्यप्रदम्,
नानापक्षिविनोदितं करभडा ग्रामं शुभं तत्स्थले ।
भण्डारी गतगोत्रजः शुचिमतिः श्रीरत्नचन्द्राभिधः,
तद्भार्याकुलजासुशीलपरिता श्रीराजबाईति सा ॥३८१॥

तस्याःकुक्षिसु शुक्तितः समभवन्मुक्ताःस्त्रयः पुत्रकाः
श्रेष्ठः श्रेष्ठजवाहरः सुतनयः पुत्रोद्वितीयस्तथा ।
हीरालाल उदग्रकाव्यविशद्स्तस्यानुजः सद्गुणी,
देशे राजति राजहंस इव यः श्रीनन्दलालाभिधः ।।२८२।।

भावार्थ—गुरुवर्य वादी-मान-मर्दक पं० मुनि श्री नन्दलाल जी म० कंभाडी, ग्राम के निवासी थे कंभाडी इन्दौर राज्यान्तर्गत एक उत्तम कृषि सम्पन्न और नयनाभिराम ग्राम है। आपके पिता श्री का नाम रतनचन्द्रजी तथा माता का नाम राजबाई था। आप के दो बड़े भाई और थे। जिनका नाम हीरालालजी तथा जवाहर लालजी था ।।२८१ २८२।।

तृतीयपुत्रोगुणिनन्दलालोऽजनिष्टहस्तेन्दुनिधिध्रुवाब्दे,
श्रीवैक्रमे यद्दष्टिपञ्चमीसत्तिथौ नभस्ये रविवासरे वै ।।२८३।।
ईस्वीसने प्राणशरेभचन्द्रे सेप्टंवरे षोडशतारिकायाम् ।
बभूवरभ्रे शुभदुन्दुभीनां पयोदनादप्रतिभानिनादाः ।।२८४।।
संसारसिन्धुं तरितुं सहर्षैः आम्नाधराखण्डवसुन्धराब्दे ।
ज्ञानाम्बुधारोत्थितपूतजीवस्तन्मातुलश्चैव पितापि दीक्षाम् ।।
सहोदराभ्यां च तथा जनन्या सहाग्रपक्षाम्बुदभूमितेऽब्दे ।
अजिग्रसच्छ्रीयुतनन्दलालो दीक्षां जिनेन्द्रोदितशास्त्रयुक्ताम् ।।
स्वाध्यायचारित्रतपः प्रसक्तध्यानात्मविचारसिको जगत्याम् ।

जुहारिलालोमुनिरैद्दिवं यो नेत्रागगो भूमितहायने च ॥३८७॥
साहित्यविज्ञः कविताविलासीमनोवचः कायविकल्पशुद्धः।
अभूद्धिरालाल उदग्रयोगी तपोदयादानशमक्षमाभूः ॥३८८॥
शीलव्रतध्यानतपः प्रभावी ज्ञानीविमोक्षाय कृतप्रयासः।
शान्तस्वभावी च गम्भीरमुद्रः विद्याम्बुतृप्तोमुनिनन्दलालः ॥
व्रह्मद्विपाब्दे वयसि स्वकीये समाविशद्मुक्तिपुरीं महर्षिः।
अन्त्येष्टिकाले मनुजास्तदोये एकीवभूवुर्गुरुभक्ति भावैः ॥

भावार्थ—श्रीयुत नन्दलालजी म० का जन्म वि० सं० १६१२ भाद्रपद शुक्ला पंचमी (ऋषि पंचमी) तदनुसार ई० सन् १८५५ के सितम्बर महीने की १६वीं तारीख के दिन हुआ था। आपके जन्म के समय बड़ा ही आनन्द और हर्ष मनाया गया ॥३८३-८४॥ आपके पिताजी श्री रतनचन्दजी तथा मामाजी श्री देवीलालजी ने वि० सम्वत् १६१४ में संसार समुद्र से पार होने के लिए दीक्षा ग्रहण की थी ॥३८५॥ उनके दीक्षित होने के बाद श्री नन्दलालजी ने भी अपने दोनों बड़े सगे भाई (मुनि श्री हीरालालजी और मुनि श्री जवाहरलालजी) तथा माता श्रीमती राजीबाई के साथ जिन शास्त्रानुसार सं० १६२० में दीक्षा अंगीकार की थी ॥३८६॥ उनमें से स्वाध्याय प्रेमी, चारित्र चूड़ामणि, तपोधनी, आत्म विद्या रसिक मुनि श्री जवाहरलालजी म० का स्वर्गवास विक्रम सम्वत् १६७२ में संथारा संयुक्त हुआ ॥३८७॥

साहित्य निष्णात मन वचन और काया से पवित्र तप, दया, दान, शम और क्षमा, आदि गुणों के भण्डार मुनि श्री हीरालाल जी का स्वर्गवास विक्रम संवत्त १६७४ में हुआ ॥३८८॥ शीलव्रती, ध्यानी, तपस्वी, ज्ञानी, शान्त स्वभावी, और गम्भीराकृति मुनि श्री नन्दलालजी म० का स्वर्गवास सम्वत् १६६३ में ८१ वर्ष की अवस्था में हुआ ॥३८६-६०॥

स्वामिन्! त्वच्चरणे पतन्ति विमलात्मानोजनाः केवलम्,
येते स्युर्भु विभूरिमूर्द्ध मणयश्चित्रं समानोदयाः।
धृत्वा ख्यातिमिमां तवेश! विशदां भाग्यादिलब्धर्द्धयः
के केन भ्रमरी भवन्ति चरणाम्भोजे सदास्वादि नि ॥३६१॥
पीत्वा त्वद्वचनामृतं जनगणाः सुस्थः समाध्युद्भवो,
देवानां निकरस्तु तत्समसुधा तृप्तस्तथा चाभवत्।
त्वं त्वं वै भुवनोपकारकरणे नैवासितृप्तस्तथा,
त्वामेवं विबुधाः स्तुवन्ति गुणिषु प्राप्त करेखं समम्॥३६२॥
श्लाघा ते मुनिराज! कस्य वदने जिह्वेव नो विद्यते,
विद्या सापि न कास्ति देव तव या जिह्वांतमासेदुषी।
सन्ति त्वय्यनघाः पवित्रितदिशः सम्यग्गुणाचापरे,
मत्वेतीव समस्तजैनजनता त्वां स्वामिनं मन्यते ॥३६३॥

भावार्थ— आचार्य श्री के इस शिक्षाप्रद वक्तव्य को श्रवण

करके सर्व मुनि मिलकर आपकी स्तुति करने लगे, कि हे स्वामिन्! आपके चरण कमल की भक्ति से जन्म मरण से रहित अविचल पद की प्राप्ति होती है । यही कारण है कि अच्छे-अच्छे योग्य पुरुष भी आपके चरणों की सेवा में लीन रहते हैं । और स्तुति करते हैं, कि हे स्वामिन्! आपके उपदेशामृत से संतुष्ट होकर प्राणी जन्म-मृत्यु के फन्दों से विमुक्त हो दिव्य पद को प्राप्त करके संतुष्ट हो जाते हैं। किन्तु हे महा परोपकारक महात्मा ! आप निरन्तर परायों का उपकार करते हुए भी संतुष्ट नहीं होते हैं। अर्थात् उपकार पर उपकार करते हुए भी आपकी परोपकार वृति अधिकाधिक वृद्धि को प्राप्त होती जा रही है । हे मुनीश ! आपकी प्रशंसा ने किसके मुख में जिह्वा की तरह विराजमान् होकर वास नहीं किया अर्थात् सभी के मुंह से आपकी प्रशंसा हो रही है । संसार में आपके सदुपदेश द्वारा पापाचारी लोग भी सुपथ-गामी हो गये हैं इसीलिए आप वास्तविक आचार्य हैं। ॥ ३६१ ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

विविधवादिमतङ्गजकेशरिन् ।
कपटपञ्जर भङ्गकृते करिन् ॥
भवपयोधि समुत्तरेण तरिन् ।
प्रबलधैर्यहरेर्वसने दरिन् ॥३६४॥
अयि गुरो! तव पादसरोजकम्,
विमलकल्पितकल्पतरुपमम् ।

दद्तु नः सुकृतं भुवि निर्ममा,
शरमामेरमामरमानिता ॥३६५॥

भावार्थ—विभिन्न वाद-विवाद स्वरूपी उन्मत्त हाथियों के के लिए सिंह के समान, कपट रूपी जाल के भञ्जन के लिए हस्तीस्वरूप, संसार समुद्र से पार करने के लिए जहाज के समान धैर्यरूपी सिंह के निवास के लिए गुफा तुल्य हे गुरु महाराज! आपके चरण-कमल, मुक्तिरूपी फल की प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं। आपके उन्हीं अमल कोमल चरणारविंदों की भक्ति के द्वारा संसार के भव भय ग्रसित अक्षय-निरामय सुख प्राप्त हो ॥३६४-३६५॥

श्रुत्वेदं स्तवनं प्रसन्नमनसाऽयं खूबचन्द्रस्ततः
आशीर्वाददतेः भवन्तु सुखिनः सर्वे जगत्प्राणिनः।
कामक्रोधमहामदादिरिपवो यान्तु क्षयंसर्वतः,
सर्वे सन्तु निरामया नयवता धर्मश्रिया शोभिताः ॥३६६॥

भावार्थ—मुनियों द्वारा की गई इस स्तुति को श्रवण करके हमारे चरित्रनायक आचार्य श्री खूबचन्द्र जी म० ने प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद प्रदान किया, कि जगत् के समस्त प्राणी निरोग धर्मनिष्ट और शोभायमान हों। तथा कामादिक षड् रिपुओं का संहार करते हुए अखण्ड सुख और यश को प्राप्त हों ॥ ३६६ ॥

श्रीचम्पकः क्षत्रियवन्धुरेको जग्राह जैनं व्यसनानि हित्वा।

पर्जन्यकाले विगते जनानां, दिल्यागराप्राभृतिसंघकानाम् ॥
संप्रार्थनायोजितसज्जनानां, संप्रार्थनाः प्रार्थनयोजिताय।
समागतास्तत्र मुनीश्वराय, धर्मस्य तत्वार्थप्ररूपकाय॥२६८
खण्डेलवास्तव्य जनास्तु तेषामनेकवारं विनयं विदध्युः।
संगत्य पार्श्वे मुनितल्लजस्य धर्मस्य तत्वार्थ पिपासितास्ते॥

भावार्थ—इस संवत् १९६३ के चातुर्मास में हमारे चरित्र-नायक जी के सदुपदेश से एक चम्पक सेन नामक क्षत्रिय भाई ने दुर्व्यसनों को त्याग कर जैन धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार चरित्रनायक जी के प्रभाव से गत १८-१९ साल में जितनी तपस्या नहीं हुई थी उतनी तपस्या इस चातुर्मास में हुई। बहुतसे उपवास तथा ३१ तेले, २८ चोले, २० पचोले, १८ अठ्ठाइयां आदि के अतिरिक्त धर्म-ध्यान संवर और पौषध व्रतादि हुए। चातुर्मास की पूर्ति के समय आपकी सेवा में देहली, आगरा, अलवर, टोंक, अजमेर, किशनगढ़, और खण्डेला आदि कई गांवों के श्री संघों की ओर से अपने-अपने क्षेत्र में चातुर्मास की विनंतियाँ तार और चिट्ठियों द्वारा आईं। तथा खण्डेला के भाइयों ने तो चार-पांच बार चरित्रनायक जी की सेवा में आकर अपने क्षेत्र को पावन करने के लिए बहुत ही आग्रह किया॥ २६७ ॥ २६८॥ २६९ ॥

श्रीनारनौलात्पटियालसंस्थान्,
पत्राण्यदात् श्रीमुनियोऽमरेन्द्रः।



'आदर्श चरितम्' के हिंदी-संशोधक एवं प्रूफ़ रीडर
धर्म-प्रेमी उत्साही युवक श्री दीपचंन्द जी सुराना
गंगधार (झाला वाड़)

सद्भाग्रहैः श्रीपृथ्विहिमांशोर
आचार्यपदोत्सवसं श्रयाय ॥४०१॥
सुरेशपर्याः विदुषी सुचन्दा,
देवी सती साऽयलिखत्पत्नाशम् ।
रुग्णा सती साधनदेइ जम्मु
वास्तव्यकाद्दष्टुमना भवन्तम् ॥४०२॥
सर्वाश्च भावान् मनसि प्रचिन्त्य,
खण्डेलतः नारनलं प्रबोध्य ।
सिषेध दिल्लीं शुभमार्गशीर्स
मासस्य कृष्णा प्रतिपत्तिथौ सः ॥४०३॥

भावार्थ—इसी प्रकार मुकाम नारनौल (पटियाला) और महेन्द्रगढ़ से पंडित मुनि श्री अमरचन्द जी और मुनि श्री श्यामलाल जी म० की ओर से वारम्बार आग्रह भरी चिट्ठियां आपकी सेवा में इस आशय की आती थीं, कि माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन पं० मुनि श्री पृथ्वीचन्द जी म० को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाने का शुभ मुहूर्त है। अतः इस शुभ प्रसंग पर आपको अवश्य ही पधारने की कृपा करनी चाहिये देहली में विराजित विदुषी श्रीमती सती जी श्री चन्दादेवी जी महाराज की ओर से भी जयपुर चातुर्मास में अनेकों वार समाचार आ चुके थे, कि पूज्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज के दर्शनों की चिरकाल से अत्यन्त

अभिलाषा लगरही है। सती जी श्री धनदेवी जी (जम्मूवाली) अस्वस्थ हैं। वे आपके दर्शनों के लिए बहुत ही लालायित हो होरही हैं। अतएव शीघ्र ही पधार कर दर्शन देने की कृपा करें"। इन सभी समाचारों को लक्ष में रख कर आचार्य श्री जी ने खण्डेला की भूमि को स्पर्श करके नारनौल होते हुए देहली पधारना ही आवश्यकीय और उचित समझा। और तदनुसार मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को आपने जयपुर से विहार कर दिया॥४०१-४०२-४०३।

विहारकाले मुनिपस्य पुर्याः, विद्यालयीयाः वसनैः सुनद्धाः।
जयैर्वचोभिःशुभरम्यवाचः,विद्यार्थिनस्तत्रपुरप्रचेलुः॥४०४

प्रतिष्टिताः सज्जनश्रेष्ठिवर्गाः, शिरांसिपादौमुनिराजकीयौ।
सप्रश्रयँप्राध्वनिसँनमनाः, शोभांविशेषांपरितप्रचक्रुः।४०५

जैनेतराः जैनजनाश्च नार्यः, केचिन्नमन्तः मुनिपँ तदा म्।
केचिच्चसभ्रानिगताःमनुष्याः,सँदर्शनैःस्वँसफलँविदध्युः ४०६

उपवनमधिशिश्ये श्रेष्टिचम्पेन्दु पत्नी,
बिनययुतशुभैः सः आग्रहै साधुराजः।
शरगतदश सँख्यां तत्र वासँ दिनाना,
मथगमनमकार्षीत् भक्तिपूर्णां खण्डेलाम्॥ ४०७॥

भावार्थ—विहार का दृश्य बड़ा ही अजीब और विलक्षण था श्री जैन सुबोध स्कूल के विद्यार्थी गण एक ही युनीफार्म (ड्रेस) से सुसज्जित हो कर गगन भेदी जय घोष करते हुए आगे-आगे चल

रहे थे। जयपुर संघ के अतिरिक्त नगर के बहुतसे गण्य मान्य नागरिक भी इस जुलूस में सम्मिलित थे। महिलाएँ भी मंगलगान द्वारा जुलूस की शोभा को बढ़ा रही थी। जुलूस जब ठीक जौहरी बाजार में आया तो वहां सैंकड़ों नर-नारियों के झुंड-के-झुंड आ-आ कर आचार्य श्री को यथा विधि वंदना करते थे। बाजार में सड़क के दोनों तर्फ दर्शकों की कतार-सी लग गई थी। यह जुलूस जौहरी चम्पालाल जी वैद्य की बगीची पर जाकर समाप्त हुआ। जौहरी जी के अतीव आग्रह से पूज्य श्री ने लगभग १५-१६ दिन तक शहर के बाहर उनकी वाटिका में निवास किया। और फिर वहां से खण्डेला की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में श्री पुंगलिया ने अपनी स्टेशन वाली धर्मशाला में ठहरने की विनती की। अतः चरित्रनायक जी ने दो दिन ठहर कर वहां भी व्याख्यान फरमाये। फिर स्टेशन से विहार कर ३ माइल दूर जटवाड़ा में पधारे। श्रीमान् सेठ चम्पालाल जी जौहरी ने जटवाड़े में आए हुए दर्शनार्थियों का भोजनादि के द्वारा उचित स्वागत सत्कार किया था। उधर खण्डेला के ८-१० सज्जन गुरु भक्ति से खिंचे हुए लगभग ४० माइल सामने आचार्य श्री की पेशवाई में आ गये थे जाड़े का मौसम था। और रास्ता बालु रेत का था। इस से जैन साधुओं का आवागमन बहुत ही कम होता था तथापि हमारे वयोवृद्ध आचार्य श्री जी ने जन-कल्याण की दृष्टि से उस कठिन रास्ते से पधारना ही उचित समझा मार्ग के छोटे बड़े सभी ग्रामों में अनेक अज्ञानी जैनेतरों को आपने अपने प्रतिबोध द्वारा सत्पथ

के पथिक बनाए। रास्ते में आहार पानी मकान आदि के अनेक परिषहों को सहन करते हुए आप खण्डेला पधारे ॥ ४०४-४०५-४०६-४०७ ॥

गव्यूतिपंक्तिं प्रययुर्मुनीशम्, खंडेलवास्तव्यजनाःभवन्तम् ।
यत्रैतिनोसाधुजनः प्रकष्टात्, तत्रैवसंसेकतपूर्णमार्गे ॥४०८॥
ग्रामाद्यपुंसां प्रतिबोधनाय, जलादिपीडां परिपीडमानः ।
शीततुकालेजरठोऽपि धर्मप्रचारणाय समुदःप्रतस्थे ॥४०९॥
खण्डेलपुर्यं भवतः सरण्यां, व्याख्यानतुर्यं प्रबभूव चैकम्
विद्यालयेऽत्र जनैःप्रपूर्णेपञ्चाशतानांनरवृन्दकानाम् ॥४१०॥
भूमा तवस्यापि बभूव नृणाम्, मुनेः प्रभावात्कृतकर्मदात्री।
ततो विहारं पुरिनारनोले, चकारधर्मेन्दुतमोभि हन्ता ॥४११॥
गव्यूति पञ्चं कविजिनसुरेन्द्रः, मुनीशकं प्रापमुनिद्वयेन ।
जयादिशब्दैर्नगरे प्रवेशो, बभूवखूबेन्दुमुनीश्वरस्य ॥४१२॥
दुलीन्दु हर्म्ये वसनं चकार, शुभाग्रहैः श्रेष्टिदुलीन्दुकैः सः
देशामृतै धार्मिकसंघकं तम्, सिञ्चन्मुनीशोऽत्र सुशान्तचेताः।
श्रीपृथ्वीचन्द्रस्य मुनीश्वरस्य, आचार्य पट्टोत्सवके तदैव ।
श्रीफूलचन्द्रोमदनोमुनिश्च, समागतौ माघसिते जयायाम् ॥

भावार्थ—खण्डेला में आपके चार-पांच सार्वजनिक व्याख्यान हुए। एक व्याख्यान सरकारी स्कूल में हुआ। जन संख्या

लगभग चार सौ पांच सौ हो जाती थी। वहां त्याग प्रत्याख्यान तथा तपश्चर्या अच्छी हुई। खण्डेला से विहार कर आप नारनौल की तरफ पधारे। तब आपके स्वागतार्थ नारनौल से लगभग दस-बारह कोस की दूरी पर कविवर्य पं० मुनि श्री अमरचन्द्रजी म० और श्री श्रीचंदजी म० आपके सामने पधारे थे। जिस दिन आपका शुभागमन नारनौल में हुआ, उस दिन भी आपके स्वागत के लिए चतुर्विध श्री संघ आपके सामने पेशवाई में पहुँचा था। तथा पं० मुनि श्री पृथ्वीचन्द्रजी म० (जो अभी आचार्य हैं और श्री श्यामलालजी महाराज आदि मुनिराजों ने भी प्रसन्नता पूर्वक आपके सामने पधारने का कष्ट उठाया था। गगन-भेदी जय-घोष के साथ आपका पदार्पण शहर में करवाया गया। श्री सेठ दुलीचन्दजी वैश्य की हवेली में आप विराजमान हुए। आचार्य-पदोत्सव का शुभ मुहूर्त माघ शुक्ला १३ का था। उस शुभ अवसर पर मुनि श्री मदनलालजी म० और मुनि श्री फूलचन्दजी महाराज (पंजाबी) ने भी पधारने की कृपा की थी ॥४०८-४१४॥



पद्यैर्मनोज्ञैर्मनसोहराणां, सुसम्प्रदायैर्भवतां मुनीनाम् ।
यत्स्वागतं प्राजनिदेववाण्यः।।हिन्द्यास्तथाधश्च विलोकनीयम्।।

पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज के, आचार्य पद
महोत्सव के अवसर पर पधारने के उपलक्ष
में सुप्रसिद्ध जैनाचार्य तत्ववारिधि त्याग-
मूर्ति पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज
साहब की पवित्र सेवा में
सादर समर्पित किया
हुआ

## "अभिनन्दन-पत्र"

—:*:—

सौम्याकृतिः परम-पुण्य-पवित्र-गात्रः ।
दुष्कर्म रूप-विष वृक्ष- सुतीक्ष्ण-दात्रः ।।
गम्भीरता-सरलतादि-गुणैक-पात्रः ।
पूज्य श्चिरं-विजयतां-मुनि-खूबचन्द्रः ।।१।।

भावार्थ—सुन्दर आकृति, पुण्य से पुनीत शरीर, पाप वृक्ष के काटने के लिये दात्ररूप गम्भीर्य, सरलता, आदि गुणों के पात्र पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ।।१।।

सत्यार्थ-बोधक-सुबोध-मरीचि-धर्ता ।
दुर्वादिनां-कुटिल-बुद्ध्यभिमान हर्ता ॥
भव्यात्मानां-तनुमतेश्च-विकाश-कर्त्ता ।
पूज्यश्चिरं-विजयतां मुनि-खूबचन्द्रः ॥२॥

भावार्थ—सत्य अर्थ की बोधक, सुन्दर किरणों को धारण करने वाले, कुतर्कियों की बुद्धि के अभिमान को चूर करने वाले, शुद्धात्माओं की स्वच्छ बुद्धि का विकाश करने वाले पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥२॥

शान्ता जवं-जव-समुत्थ-दुरन्त-तापः ।
संशुद्ध-भक्तिकृत-सन्मतिनाथ-जापः ॥
मार्तण्ड-तुल्य-परिदीप्त-तपः-प्रतापः ।
पूज्यश्चिरं-विजयतां-मुनि-खूबचन्द्रः ॥३॥

भावार्थ—संसार में उठे हुए दुरन्त सन्ताप को नष्ट करने वाले, शुद्ध भक्ति द्वारा भगवान् महावीर का जाप करने वाले, सूर्य के समान दीप्त प्रताप वाले, पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥३॥

नाना सुरष्टि-जन-वंदित-पाद कंज ।
शान्ते-विहार-रमणीय-लता निकुंजः ॥

ध्यानाग्नि-दग्ध-परिवर्द्धित-पाप पुंजः ।
पूज्यश्चिरं-विजयतां-मुनि खूबचन्द्रः ॥४॥

भावार्थ—अनेक राष्ट्रों में मनुष्यों से पाद-पूजित, शान्ति के विहार के लिये, सुन्दरलता मण्डप, बढ़े हुए पाप समूह को ध्यान की अग्नि से जलाने वाले, पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥४॥

दूरीकृताखिल-ममत्व-तमो-वितानः ।
कदर्प दर्प दलने सफला-भियानः ॥
क्षान्त्या-विनिर्जित-कदाग्रह-कोपमानः ।
पूज्यश्चिरं-विजयतां-मुनि खूबचन्द्रः ॥५॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ममता के अन्धकार समूह को दूर करने वाले, कामदेव के अभिमान को चूर करने में सफल हैं, आरम्भ जिनका क्षमा से, कुत्सित आग्रह, कोप, और अभिमान को जीतने वाले पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥५॥

साक्षादखण्ड-शुभ-सत्य-दयावतारः ।
शास्त्रावगाहन-परिष्कृत-सद्विचारः ॥
पूर्ग्राम-संघ-कृत-जैनमत-प्रचारः ।
पूज्यश्चिरं-विजयतां-मुनि खूबचन्द्रः ॥६॥

भावार्थ—अखण्ड शुभ, सत्य और दया के अवतार, शास्त्रों

के अवगाहन से परिष्कृत-विचार युक्त, नगर, ग्राम और संघों में जैनमत के प्रचारक, पूज्य श्री मुनि खूबचन्द्रजी की विजय हो ॥६॥

# उपसंहार

व्याख्यानैः सुमनोहरैः परिषदे, श्रद्धान्युतान्मोदयन् ।
नाना-जन्म-विवृद्ध कर्म-फलिनां, मूलं-समून्मूलयन् ॥ श्रेष्ठे-
मोक्ष पथे सुयुक्ति शतकै,र्भव्याञ्जनानुस्थापयन् । पूज्या-
चार्य वरः सदैव जयतात्, सुप्तँ जगद् बोधयन् ॥७॥

भावार्थ—सुमधुर व्याख्यानों द्वारा श्रद्धा युक्त मनुष्यों का आनन्द बढ़ाते हुए, अनेक जन्मों के कारण बढ़े हुए कर्म वृक्षों की मूल को उखाड़ते हुए, सैंकड़ों युक्तियों द्वारा श्रेष्ट मनुष्यों को सुन्दर मोक्ष मार्ग में ले जाते हुए, सोये हुये जगत को जगाते हुये आचार्यवर सदैव विजय प्राप्त करें ॥७॥

माघ कृष्णा १२ सोमवार
ता० ८ फरवरी १९३७ ई०

समर्पयित—
पूज्य श्री मनोहर दासीय
सकल श्रमण संघ ।

# ❀ स्वागत ❀

---

करने स्वागत आपका श्री पूज्य मुनि जन आये हैं।
कर कृपा स्वीकारये सेवा निवेदन लाये हैं॥
काल-कानन में तृषित भटके फिरे जो आज लौं।
प्राप्त कर आनन्द-घन आनन्द-जल झलकाये हैं॥
हे पतित पावन करो पद-रज से पावन ये धरा।
पन्यजन से पाप के जन आपके घबराये हैं॥
ज्ञान रवि से नाश निशितम कर किये कोटिक अभय।
ये विरद सुन आपका धन धैर्य धर धर्राये हैं॥
शास्त्र निधि तव पद कमल पर मन भ्रमर गुंजा रहे।
रंक जिमि धन राशि अरु अहि लइ मणि सुख पाये हैं॥
होगया विश्वास आश्वासन मिला भय मिट गया।
वर्ण धारी करने जब सागर मथैया धाये हैं॥
कर मदन मद भंग रिस मोह लोभ जारि तपाग्नि से।
शान्ति सागर वीतरागी द्वेष दुर्ग ठहाये हैं॥
"परोपकार सतां विभूतय" रम रहा अत्यंग में।
हिंसकों के मन अहिंसा धर्म से दहलाये हैं॥
प्राप्त हो निर्वाण पद इन्द्रिय अजित बल चूर हों।
अति सुगम अति श्रुति प्रिय उपदेश नित्य सुनाये हैं॥

चल किया प्रस्थान पापाचार ने जिस ओर को।
आपने पग धार-पुन्योद्यान मुनि लहराये हैं॥
धन्य वड़भागी किया जन को कृपा की दृष्टि से।
होगये कृत कृत्य दर्शन कर हृदय हर्षाये हैं॥
गिन रहे थे उंगलियों पर वार तिथियां रैन दिन।
आपके प्रिय-भक्त गद्‌गद कंठ हो हुलसाये हैं॥
किस तरह स्वागत करें उलझन कठिन है पूज्य श्री।
केवल इतना ज्ञान है श्री ज्ञान शशि उदयाये हैं॥
हृदय वेदि पर विराजें नाथ है ये कामना।
पूज्य मुनि श्री खूबचन्दर "मैड़" जन मन आये हैं॥
( बनवारी लाल 'मैड़" मंत्री श्री जैन संघ नारनौल )

पृथ्वीन्दुराचार्यपदं बभूव, गणिपदं श्यामशशी प्रपेदे।
जना उपाध्यायपदेऽमरेन्दुम्, नियुक्तवन्तो बहुसंख्यकास्ते॥
विहृत्य रेवाडिपुरीं सिषेधघे, श्री मुंशिरामीय गृहे च तस्थौ।
स्वसम्प्रदायीयगृहस्थयुग्मं, तथापि लोका बहवः सभायां॥
समागताःश्रीभवतः प्ररम्यां, व्याख्यानशैलींपरितः शुभांताम्
संवीक्ष्यशान्ति शुभदाञ्च तत्र,दैगम्बरा वैष्णवबन्धवोऽपि॥
पञ्चद्वयं तत्र दिनानि नीत्वा, जनोपकारं विदधन्मुनीशः।
मार्गस्थानैकान्मनुजान्पुनान, चैत्रे रदैन्द्रं नगरं जगाहे॥

भावार्थ—निश्चित तिथि पर पद-प्रदान का कार्यक्रम सा-

नन्द सम्पन्न हुआ। श्री पृथ्वीचन्द्र जी म० को आचार्-पद मुनि-श्री श्यामलाल जी म० को गणावच्छेदक पद, और मुनि श्री अमरचंद जी म० को उपाध्याय का पद समारोह पूर्वक प्रदान किया गया। इसी शुभ प्रसंग पर दो दीक्षार्थियों की दीक्षा भी हुई। इन महोत्सवों में बाहर से सैंकड़ों स्त्री पुरुषों ने आकर भाग लिया था आप नारनौल से रेवाड़ी पधारे। वहां श्री० लाला मुन्शीराम जैन रईस के नवीन मकान में निवास किया। वहां स्थानक वासियों के केवल एक-दो घर होते हुए भी आचार्य श्री के व्याख्यान में लगभग ३५-४० स्त्री-पुरुषों की उपस्थिति होती थी। आपकी शान्त मुद्रा को देख-देख कर दिगम्बर भाई भी आपकी बड़ी ही प्रशंसा करते थे। आप वहां पर दस रात्रि विराजे। वहां से विहार करके आप कई छोटे-बड़े स्थानों में जिन-वाणी का प्रचार करते हुए चैत्र मास में शहर देहली में पधारे ॥ ४१५—४१८ ॥

सुस्वागतं पूर्णमनोज्ञशोभं, जनाःप्रचक्रुर्मुनिपस्य दिल्ल्यां।
अत्याग्रहँ चापि विदध्युर्लोकाः, अध्यङ्कभूखण्डमहोभवस्य॥
पर्जन्यकालस्य निवासनाय, भक्तिं शुभां धर्ममतिं जनानाम्
दृष्ट्वातदार्थाङ्कनिधीन्दुजातँ, पर्जन्यकालँ मुनिरत्र तस्थौ॥

तुर्याङ्काङ्कमहीमिते मुनिवरो छ्न्वेन्दुजिह्वामकः
चत्वारिंशत्पञ्चसँख्यकमित तक्षोदका धारतः॥
तेये तत्र तपस्तदाऽऽसुमनः सँपारणायां पुनः।

लोकाः दानरसास्तदात्मभवन्शोभोत्सवैर्भाविताः ॥

भावार्थ—देहली के श्री संघ ने आपका शानदार स्वागत किया। और चातुर्मास के लिए अत्यन्त आग्रह किया। अतः संवत् १९६४ का चातुर्मास आपने शहर देहली में किया ॥ ४१८ ॥ ४१९ ॥

इसी वर्ष आपकी सेवा में निवास करने वाले तपोनिष्ठ मुनि श्री छब्बालाल जी महाराज ने केवल गर्म जल के आधार से ४५ दिन की तपश्चर्या की। तपस्या की पूर्ति पर बाहर गांवों से सैकड़ों दर्शनार्थियों ने आकर तपोत्सव की शोभा में अभिवृद्धि की थी। उस दिन दया, दान, परोपकारादि बहुत से धार्मिक कृत्य हुए। बारह दरी के नीचे दूध की प्याऊएँ खोली गई थी। श्री संघ ने तपोत्सव बड़े उत्साह पूर्वक मनाया था।

पञ्चाङ्क भूखण्डमहीमिताब्दे, सँघाग्रहैरत्र चतुर्थमल्लः ।
खूबेन्दुजिच्चापि मुनीश्वर्यः पर्जन्यकालं महसा निनाय ॥
प्रसिद्धवक्ता मुनिचौथमल्लः श्रीखूबचन्द्रो मुनिसत्तमश्च ।
एकत्र कालँ जलदीयकाले, चकार सोऽयँ प्रथमोस्तिकल्पः ॥

भावार्थ—अगला चातुर्मास अर्थात् सम्वत् १९६५ का चातुर्मास भी आपने देहली में ही किया। इस वर्ष हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज और जैन-दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पं० मुनि श्री चौथमल जी महाराज इन दोनों महापुरुषों का सम्मिलित

चातुर्मास चांदनी चौक वाले श्री महावीर जैन-भवन की विशाल विल्डिग में हुआ।

चतुर्थमल्ला श्रयनेमिचन्द्रः दिनानि तुर्याश्वनितानि तेपे।
तोयस्य तप्तस्य शुभा श्रयेण, पूर्वाणि कर्माणि विचूर्णयिष्यन्॥
श्रीखूबचन्द्रस्यमुनिश्छवेन्दुः तुर्याब्धिसंख्याप्रमितं दिनानाम्।
पर्यूपणे कर्म निवर्हकाणि, तपांसि तेपे जलमात्र सेवी॥
दुग्धस्य लोकाःशुभपारणान्ते, चक्रुः सुदानं जिन भक्तिलीनाः।
निर्ग्रन्थसप्ताहपरं सुज्ञान, दानं ददौ तत्र चतुर्थमल्लः॥

भावार्थ—इस वर्ष के चातुर्मास में धर्म-ध्यान और तपश्चर्या अच्छी हुई। निर्ग्रंथ-प्रवचन-सप्ताह सानन्द मनाया गया। तपस्वी श्री छब्बालाल जी म० तथा तपस्वी श्री नेमिचन्द जी म० ने केवल गर्म जल के आधार से क्रमशः ३४ और ४७ दिन की तपश्चर्या की तप-व्रतों की पूर्ति पर संघ की ओर से बारह दरी के नीचे दूध की प्याऊएँ दीगई थी। और उस दिन बहुत-सा उपकार हुआ। बाहर गावों से दर्शनार्थियों ने उपस्थित होकर दर्शन और चरण-स्पर्श का लाभ लिया था। चरित्रनायक जी की शान्तवत्ति, वैराग्य,और नम्रता आदि सद् गुणों को समाज भली प्रकार जानती है। आप को अधिकांश तात्विक ज्ञान की बातें और सूत्र-रहस्य कण्ठस्थ याद हैं।

निर्ग्रन्थसप्ताहमनेकलोकाः पुरीञ्च ग्रामान् प्रविहाय याताः
श्रीशक्रपुर्याः शुभसंघ कस्तानातिथ्य सत्कारतया प्रपेदे ।
प्रभावना धर्मसुलीन भावा तत्रस्त्य जनता हर्ष प्रमग्ना ॥
गार्हस्थ्यकार्यं प्रविहाय सद्यः धर्मस्य संराधानतत्परा भूम् ॥

उदयपुर नरेशः पूज्य श्री खूबचन्द्रात्
प्रथितसुखदशान्तिः शास्त्रतत्त्वस्य·········
जनमतशुभतत्त्वँ चौथमल्लात्तथैव,
जिनमतशुभसूर्यात् ख्यातवक्तुः पृथिव्याम् ।
निगदितमनुकर्ण्या भूरि भूरि प्रशँसाम,
विदधदन्तु शुभं स्वँ तत्वसँलीन भावा ।
गदतु गदतु धर्म्मं मे हितँ भावयन्तौ,
पुनरपि शुभवाणीं स्वच्छचेताः वितेने ॥

भावार्थ—इसी वर्ष अर्थात् १९९५ के कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी रविवार तदनुसार ता० ६-११-३८ को देहली में उदयपुर नरेश श्रीमान्··············ने हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज एवं जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री चौथमल जी महाराज का व्याख्यान लगभग एक घन्टे तक श्रवण करके बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ।

# सप्तम परिच्छेद

## आचार्य-क्रमावली

पूज्य श्रीहुक्मेन्दुजिन्मुनिरभूत्श्च(च्छिवेन्दुर्वभौ,
पूज्य श्रीरुदयाब्दिजिच्चववृते श्रीचौथमल्लः पुनः ।
श्री श्रीलालमुनिश्चपूज्यपदवीं मन्नेन्दुऽमादधौ,
खूबेन्दुश्चविराजते शुभपदे भावी छगनल लजित् ॥

(१) पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज ।
(२) पूज्य श्री शिवलाल जी महाराज ।
(३) पूज्य श्री उदयसागर जी महाराज ।
(४) पूज्य श्री चौथमल जी महाराज ।

(५) पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज-(५) पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज
(६) पूज्य श्री खूबचन्द जी महाराज
(७) युवाचार्य श्री छगनलाल जी म०

## संक्षिप्त-परिचय

ढूंढार स्थितटोडग्रामवसनो जात्यौसवालमहान्,
पूज्यश्रीचपलोतगोत्र तिलको हुकमेन्दुजिन्नामकः ।
नन्दर्षिद्विप भूमिते शुभतमे श्रीमार्गशीर्षे वरे,
श्रीलालेन्दुमुनीशतः शुभपरो जग्राह दीक्षामयम् ॥

धृत्वा वै सलिलादिकं त्रिदशकं शेषाणि वस्तूनिकौ,
त्यक्त्वैकाधिकविंशहायनमितं वेला परं पारणम् ।
यंचक्रेस्तुतिपाठलीन हृदयः शिष्यस्य त्यागि भवन्,
स्वर्गारोहणकं ततान मुनिभू नन्दैकवर्षे मिते ॥

(१) पूज्य श्रीहुक्मीचन्द जी महाराज—आप ढूंढ़ार देशान्तर्गत 'टोड़ा' नामक ग्राम के निवासी थे। आपका जन्म ओसवाल वंश के चपलोद गोत्र में हुआ था। आपने संवत् १८८६ के मार्गशीर्ष मास में, अपने पूज्य गुरुवर्य श्री मुनि श्री लालचन्दजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आपने इक्कीसवर्ष तक बेले-बेले पारणा की तपश्चर्या की थी आप केवल एक ही चद्दर ओढ़ते थे। आपने अमुक अमुक तेरह वस्तुओं के जैसे पानी एक, रोटी दो यों तेरह वस्तुओं का आगार रख कर शेष मिष्टान्न, घृत, दूध और तेल आदि समस्त पदार्थों का परित्याग कर दिया था। सेकी हुई वस्तु जैसे पापड़ और बाटी वगैरा तथा तली हुई वस्तुओं को भी आपने त्याग दिया था। आप नित्यप्रति दो सौ नमुत्थुणं का पाठ करते थे। अर्थात् प्रतिदिन दो सौ बार आप सिद्धों की स्तुति करते थे। शिष्य के परित्याग थे। आपका स्वर्गवास सं० १६१७ में जावद में हुआ।

लोढे साजनगोत्रभाक्शिवशशी जात्यौसवालोमुनिः,
धाम्णोदं जनपान्वशुभदयं श्रीमालवान्तर्गतं।

भूनन्दद्विप भूमिवत्सरमिते श्रीमार्गशीर्षाशिते,
षष्ठ्यां रत्नललामके गुरुदिने श्रीमद्गजानन्दतः ॥
संदीक्षिण्ययकं चकार नगर श्रीश्रेष्टिभोजा स्वयं,
त्रिंशत्पञ्चगतं तताप सुतपः एकान्तर कर्मघम्,
शिष्यत्यागपरोबभूव मुनिराडाचार्यपट्टंगतः,
तुर्याक्षिग्रहभूमिते दिविपदं भेजे पुरे जावदे ॥

(२) पूज्य श्री शिवलाल जी महाराज—आप मालव देश के अन्तर्गत 'धामणिया' नामक ग्राम के निवासी थे। आपका जन्म छोटे साजन ओसवाल जाति में हुआ था। आपने संवत् १८६१ के मार्गशीर्ष शुक्ला ६ गुरुवार के दिन मालवा के सुप्रसिद्ध नगर रतलाम में पूज्य श्री कोटा सम्प्रदाय के लालचन्दजी म० के सुशिष्य मुनि श्री गजानन्दजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की थी। आपके दीक्षा-महोत्सव के व्यय का समस्त भार रतलाम के नगर सेठ श्री भोजा जी भगवानजी ने वहन किया था। आपने ३५ वर्ष तक एकान्तरतप किया। आचार्य-पद पर आरूढ़ होते ही आपने अपने नवीन शिष्य बनाने का परित्याग कर दिया। आप का स्वर्गवास संवत १६३४ में जावद में हुआ।

पूज्यश्रीरुदयाब्धिजिनमुनिरभूत्खींवेसरागोत्रभाक्,
मारवाड स्थितयोद्धपुरनगरे जात्यौसवालोमहान् ।

सप्ताकाशनवैकसंख्यकमिते हुक्मेन्दुना दीक्षितः,
भूपं संदिदिशे प्रतापगढपं श्रीजावरास्वामिनम् ॥
वस्वक्षिग्रहभूमिते शिवजितं संवेगिनं पालिगम्,
शास्त्रार्थे परिजित्य कृष्णजलधिं शिष्यं तदीयं तदा ।
सम्यक्त्वं परिशिक्ष्यदीक्षितमलं चक्रे सभायां जयी,
सोऽयं रत्नललामके दिवमयात् तुर्याग्निनन्देन्दुके ॥

(३) पूज्य श्री उदय सागर जी महाराज—आप जोधपुर ( मारवाड़ ) के निवासी थे। आपका जन्म बड़े साथ ओसवाल जाति के खींवेसरा गोत्र में हुआ था। आपने सं० १६०७ में पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के पास दीक्षा स्वीकार की थी। आपने जावरा के नवाब साहब श्री गोश्त मोहम्मद खां जी और प्रताप गढ़ के नरेश श्रीमान् उदयसिंहजी सा० आदि कई राजा-महाराजों को उपदेश प्रदान किया था। संवत् १६२८ में आपने पाली (मारवाड़) में एक सम्वेगी साधु श्री शिवजी रामजी के साथ इस शर्त पर शास्त्रार्थ करना निश्चय किया था कि पराजित होने वाले पक्ष को, अपना एक शिष्य विजयी पक्ष को देना होगा। तदनुसार शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में आपकी विजय हुई। अतः शर्तानुसार सम्वेगी साधुजी ने अपने एक शिष्य श्री किशनसागरजी को सहर्ष आपकी सेवा में समर्पण कर दिया। आपने श्री किशन सागरजी को शुद्ध सम्यक्त्व की शिक्षा देकर जैनेन्द्री दीक्षा से दीक्षित किया। आपका स्वर्गवास सं० १६५४ में रतलाम में हुआ।

पूज्यश्रीमुनिचौथमल्लजिदयं मार्वाडपालिस्थिति-
रोस्वालोनवशून्यनन्दकुमिते हुक्मेन्दुना दीक्षितः ।
शिष्यत्यागपरोबभूव मतिमानाचार्यपट्टे स्थितः,
सप्ताग्न्यङ्कहिमांशुके दिवमयात् रत्ने पुरे योगभाक् ॥

(४) पूज्य श्री चौथमलजी महाराज—आप पाली ( मारवाड़ ) के निवासी थे । आपका जन्म बड़े साथ ओसवाल वंश में हुआ था । आपने संवत्त १९०९ में पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के समीप दीक्षा ग्रहण की थी । आपको लगभग पांचसौ थोकड़े तथा अधिकांश सूत्रों का ज्ञान कण्ठस्थ था । आचार्य होने के पश्चात् आपने शिष्य का परित्याग कर दिया । आपका स्वर्गवास संवत् १९५७ में रतलाम में हुआ ।

श्रीश्रीलालजिदोंसवाकुलभूटोंकस्य वासी मुनिः
सप्ताब्ध्यङ्कहिमांशुके स्वरमणी त्यक्त्वा विरक्तोऽभवत् ।
शिष्यः श्रीमुनिचौथमल्लसुमनेः शिष्यस्य त्यागी नृपान,
नैकान् संप्रतिबोध्य सप्तहय भूखण्डेन्दुकेऽयाद्दिवम् ।

(५) (अ) पज्य श्रीश्रीलालजी महाराज–आप टोंक के निवासी थे । आपका जन्म बड़े साथ ओसवाल वंश के बम्ब गोत्र में हुआ था । आपने संवत् १९४७ में अपनी स्त्री को छोड़ कर परम वैराग्य भाव से पूज्य श्री चौथमलजी म० के पास दीक्षा ग्रहण की थी । आप प्रति मास एक-एक तेला किया करते थे । कई राजा-

महाराजाओं को आपने प्रतिबोध दिया। आपने भी शिष्यों का परित्याग कर दिया था। संवत् १६७७ में जयतारण ( मारवाड़ ) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मन्नालालजिदोसवाकुलभूर्नागोरीगोत्रे मणिः,
संदीक्षामुदयाभिधनामकमुनेर्वस्वग्निनन्देन्दुके।
लात्वा रत्नललामवासिसुमुनिः प्राधीत्य शास्त्राणि च,
प्राप्याजमेरपुरेसमेलयशः खाङ्काङ्कचन्द्रे खमेत्॥

(५) (च) पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज—आप रतलाम ( मालवा ) के निवासी थे। छोटे साथ ओसवाल वंश के नागौरी गोत्र में आपका जन्म हुआ था। संवत् १६३८ में पूज्य श्री उदयसागरजी म० के पास आपने दीक्षा अंगीकार की थी। आपको शास्त्रों का पर्याप्त ज्ञान था। आपकी प्रकृति बड़ी कोमल और सरल थी। आपने वृहद् मुनि-सम्मेलन के समय अजमेर में साम्प्रदायिक वैमनस्य की इति श्री करके अखण्ड यश प्राप्त किया था। आपका स्वर्गवास संवत् १६६० में ब्यावर में हुआ।

श्रीखूबेन्दुजिदोसवालकुलभूटौंकान्तनिम्बाहडा-
वास्तव्यो नयनेन्द्रियांक कुमिते नन्देन्दुना दीक्षितः।
श्रीजेतावगोत्रभूर्मुनिरयं शान्त्या महाशोभनः
ज्ञानध्यानरतः सदा विजयते शास्त्राणि संलोचयन्॥

(६) पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज—आप निम्बाहेड़ा (टौंक)

के निवासी हैं। वड़े साजन ओसवाल वंश के जेतावत गोत्र में आपका जन्म हुआ है। संवत् १६५२ में आपने अपनी पत्नि को छोड़कर वादी-मान-मर्दक पंडित मुनिश्री नन्दलालजी म० की सेवा में दीक्षा धारण की है। आपकी प्रकृति बड़ी कोमल और सरल है। आपके चहरे पर प्रतिक्षण सौम्यता नृत्य करती रहती है। आप सदैव ज्ञान-ध्यान में निमग्न रहा करते हैं। आपको शास्त्रों का यथेष्ट बोध है।

श्रीमद्विंशतिपोरवाडतिलकः श्रीमान्छगनलालजि-
ल्लेभे जन्मसुमन्दसौरनगरे श्रीमालवान्तर्गते।
दीक्षां श्रीचौथमल्लसुमतेः संप्राप्य पश्चादयं,
शास्त्राणि प्रविलोचयन् शुभमतिर्भेजे युवाचार्यताम्

(७) युवाचार्य श्री छगनलालजी महाराज—आप मन्दसौर ( मालवा ) के निवासी हैं। आपका जन्म बीसे पोरवाड़ वंश में हुआ है। आपने संवत् १६६८ में जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री चौथमलजी म० के पास दीक्षा स्वीकार की है। शास्त्रों का आपको अच्छा ज्ञान है।

## साम्प्रदायिक मुनिगण

—o—

जैनाचार्यचरित्रनातक मुने राज्ञा वहन्तोऽधुना
विद्यन्ते भुविखूबचन्द्रसुमुनेः तेषां मुनीनां पदम्।

व्याचव्याख्यगतं यथागुणमतं नामावलीसंगतं
धर्माराधनतत्परं शुभकरं पश्यन्तु भव्याः हृदि ॥१३॥

जैनादित्यबुधश्चतुर्थमलजिन् वक्ता प्रसिद्धो भुवि
योगेलीनमनो हजारिमलजित् कस्तूरचन्द्रो बुधः।
श्रीमान् मौक्तिकलालजिच्च सुमुनिः प्रावर्तकः शान्तिभाक्
श्रीमान् केशरीमल्लजित्सुखमुनिः श्रीहर्षचन्द्रस्तथा ॥१४॥

विद्यादान रतोहजारिमलजित् प्रावर्तकः पण्डितः
पाण्डित्येनयुत छगन्नमलजित् भूमौ युवाचार्यकः
व्यासेवी मुनिनाथुलाल जिदयं साहित्यरत्नस्तथा
साहित्यज्ञगणी प्रसन्नहृदयः श्री प्यारचन्द्रो मुनिः ॥१५॥

मायाचन्द्रमुनिः सहस्रमलजित् श्री भैरूलालस्तथा
व्याख्यातामुनिवृद्धिचन्द्रजिदयं शोभाछगालालकौ
व्याख्यानेनिपुणौमतौ मुनिवरौ श्रीनाथुरामेन्दुकौ
संतोषेन्दुः मुनिः तथा मगनजिन् साहित्यबोद्धाबुधः ॥१६॥

पाण्डित्येन पुनःप्रतापमलजिन् साहित्यप्रेमीमतः
हीरालालबुधे निदेशनपरः चम्पेन्दुकः संमतः।
श्रीमान् केवलचन्द्रजिच्चसदक्षिव्याख्यानदक्षो मतः
व्यासेवी मुनियोगनिष्ठ मधुरः श्रीराजमल्लोऽपरः ॥१७॥

योगी श्री विजयेन्दुकः प्रियंवचः श्रीमोहनः सोहनः
हुक्मीन्दुमुनिसेवकश्चसुमने: विद्येच्छुका योगिनः
श्रीमज्जवाहरलालशक्रमलजिन्कृष्णेन्दुचेतोहराः
श्रीमान् नानकरामजिच्च सुमुनिः कल्याणमलस्तथा॥१८॥
योगी श्री मुनिनेमिचन्द्रजिदयं हीरेन्दुविद्येच्छुकः
सेवी श्री मुनिलाभचन्द्रतपसी श्रीसागरोयंतथा
सेवायां निपुणश्च पूर्णशशिभृत् श्रीदीपचन्द्रोऽपरः
श्री मिश्री पुतबालरामशशिनः श्रीवर्धमानो नगी ॥१९॥
श्रीचम्पेन्दुसुरोशनोच सुमुनी विद्येच्छुकाः संमताः
सेवायां निपुणः वसन्त शशभृत् मन्नेन्दुजिच्चापि वै
विद्याया अभिवाच्छको मुनिवरौ श्री चन्दनो हर्षणः
भैरुंलाल मुनिरतपस्विसुवरः श्री चांदमल्लस्तथा ॥२०॥
बंशीलाल मुनिश्च देशनपरः श्री मोतीलालोऽपरः
नित्यं स्वात्मरतः तपोऽभिनिरतः श्री रेणूपालोमुनिः
विद्याया अभिवाञ्छकश्च सुमतिः श्री रिन्द्रमल्लोपरः
एवं नूतन दीक्षयान्अनुगतः श्री भांवरेन्दुः मतः ॥२१॥

चरित्रनायक जैनाचार्य पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज की आज्ञा में विचरने वाले वर्तमान मुनियों की शुभ नामावली—

(१) जैन-दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी म०

(२) तपस्वी श्री हजारीमलजी महाराज
(३) पंडित मुनि श्री कस्तूरचन्दजी महाराज
(४) तपस्वी प्रवतक मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
(५) सलाहकारक मुनि श्री केशरीमलजी महाराज
(६) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री सुखलालजी महाराज
(७) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज
(८) प्रवर्तक पंडित मुनि श्री हजारीमल जी महाराज
(९) युवाचार्य पंडित मुनि श्री छगनलालजी महाराज
(१०) व्यावची मुनि श्री नाथूलालजी महाराज
(११) साहित्य-रत्न गणिवर्य पं० मुनि श्री प्यारचंदजी महाराज
(१२) तपस्वी मुनि श्री मयाचन्दजी महाराज
(१३) उपाध्याय पंडित मुनि श्री सहस्रमलजी महाराज
(१४) स्वाध्यायी मुनि श्री भैरूलालजी महाराज
(१५) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री वृद्धिचन्दजी महाराज
(१६) व्यावची मुनि श्री शोभालालजी महाराज
(१७) तपस्वी मुनि श्री छब्बालालजी महाराज
(१८) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री नाथूलालजी महाराज
(१९) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री रामलालजी महाराज
(२०) व्यावची मुनि श्री संतोपचन्दजी महाराज
(२१) साहित्यज्ञ पंडित मुनि श्री मगनलालजी म०
(२२) साहित्य प्रेमी पंडित मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज
(२३) प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री हीरालालजी महाराज

# चित्र-परिचय

## जैन सभा जम्मू के सदस्य गण

आप लोगों के द्वारा जम्मू (काश्मीर) में अनेक धार्मिक संस्थाओं का संचालन हो रहा है। आप सब धर्म के बड़ेही अनुरागी हैं। आपने अपने यहां पं० मुनिश्री हीरालालजी म० आदि ठा. ३ का चातुर्मास करवाकर अपनी आदर्श गुरु भक्ति और धर्मानुराग का परिचय दिया है। जम्मु के संघ ने अपने यहां स्वर्गीय पुज्य श्रीमुन्नालालजी म० का आचार्य-पद-महोत्सव बड़े ही उत्साह से समारोह पूर्वक मनाया था। और प्रस्तुत पुस्तक १००० प्रति जैन सभा जम्मू ने प्रकाशित करके जनता के कर-कमलों में सप्रेम भेंट की है।

## स्वर्गीय लाला लोटनमल जी जैन

आप देहली की ओसवाल समाज के एक प्रतिष्ठित जौहरी थे। आपका स्वर्गवास संवत १९९५ कार्तिक शुक्ला ६ को हुआ। आप अपने पीछे अपनी धर्मपत्नि, दो पुत्रियां और ४ पुत्र छोड़ गये थे। आप धर्म के बड़े प्रेमी थे। आपकी धर्मपत्नि श्रीमति लाड़ बाई भी बड़ी उदार चित्त और धर्म परायणा हैं। आपने अपने स्वर्गीय पूज्य पति देव के स्मरणार्थ इस आदर्श चरितम् की ५०० प्रतियां अपने निजी द्रव्य से प्रकाशित करके जनता के कर-कमलों में समर्पित की हैं। चित्र में बांई ओर स्वर्गीय लालाजी के होनहार विद्यमान पुत्ररत्न चि० बाबू सुरजमल जी जैन खड़े हैं।

## [illegible] की खुशी में

### अलवर नरेश

आप मातृभाषा हिन्दी के बड़े प्रेमी और प्रजावत्सल नरेश थे। आपने पूज्यश्री खूबचंदजी म० के संवत् १९७६ के चातुर्मास में तपस्वी श्री मयाचंदजी महाराज के तप-व्रत की पूर्ति के उपलक्ष में सारे अलवर शहर में आम अगता पलवाया था। अर्थात आप-की आज्ञा से शहर में सब प्रकार के हिंसाकाण्ड जैसे बूचड़खाने आदि बन्द रहे थे।

### जयपुर नरेश

आप मातृ भूमि के सच्चे प्रेमी और प्रजापालक नरेश थे। आपने संवत् १९७७ में पूज्य श्री खूबचंदजी म० के चातुर्मास में तपस्वी मुनि श्री मयाचन्दजी म० के तप-व्रत की पूर्ति के उपलक्ष में सारे जयपुर नगर में आम अगता पलवाया था। यहां तक कि उस रोज आपने अपनी राज-घोषणा द्वारा हलवाइयों की भट्टियां, भड़भूजों की भाड़ें और तेलियों की घाणिएं आदि समस्त हिंसात्मक कार्यों की सख्त मनाई करवाई थी। सिंहों को भी उस रोज दूध पिलवाया गया था। बूचड़खाने और कसाइयों की दूकानें आदि सभी हिंसात्मक कार्य उस रोज बन्द रहे।

### श्रीमान् सेठ सौभागमलजी मेहता

आप जावरा (मालवा) के नगर सेठ हैं। आप स्थानकवासी सम्प्रदाय के सच्चे उपासक हैं। पूज्य श्री हुक्मीचंदजी म० की सम्प्रदाय के श्रावक-समाज में आप अग्र-गण्य हैं। सम्प्रदाय की

... ...भाग में आप उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। आप को शास्त्रों का अच्छा बोध है। कई साधु-साध्वियों को आप ने शास्त्राध्ययन करवाया है। मुनिराजों की अनुपस्थिति में आप श्रावकों को शास्त्र सुनाते रहते हैं। आप धर्म के पूर्ण अनुरागी हैं। आपका भक्ति-भाव प्रसंशनीय है। आपकी देख-रेख में अनेक धार्मिक संस्थाओं का संचालन हो रहा है।

## श्रीमान् दीपचन्दजी सुराना

आप गंगधार (झालावाड़) के उत्साही नवयुवक हैं। सेवा-भावी और धर्म प्रेमी हैं। आप अनेक वर्षों तक श्री जैनोदय-पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम द्वारा संचालित श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस में मेनेजर के पद पर रह कर अपनी कार्य कुशलता का परिचय दे चुके हैं। सहन शीलता इमानदारी और सत्य-निष्ठा आपके जीवन की मुख्य विशेषताएँ हैं। आपको हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान है। आपकी लिपि बड़ी सुन्दर और सुवाच्य है। आपने इस पुस्तक की हिन्दी भाषा के संशोधन में प्रर्याप्त परिश्रम किया है।

## श्रीमान् बाबू निरंजनसिंहजी जैन

आप कपड़े के प्रसिद्ध व्यापारी और "श्री० अमानतरायजी निरंजनसिंह" की फर्म के प्रोप्राइटर हैं। आप तीतरवाड़ा (जिला मुजफ्फर नगर) के निवासी हैं। धर्मप्रेमी और उत्साही नवयुवक हैं। आप योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। पिता पुत्र दोनों के विचार अच्छे हैं। दोनों सेवाभावी और दानी हैं। दोनों का स्वभाव बड़ा ही सरल और सीधा है। भक्ति-भाव प्रसंशनीय है।

# आदर्श चरितम् की खुशी में

## कर्मचूर वृक्ष के साथ

# उपहार

---

यह चित्र तिरंगे ब्लाक से बना हुवा है और इसमें कर्मचूर तप का विधान बतलाया है इसके अलावा चित्रकार ने अपनी कारीगरी के साथ इसमें चार पक्षी अद्भुत रीति से छुपाये हैं जोकि प्रत्येक व्यक्ति बहुत परिश्रम करने पर ही पा सकते हैं।

इसके साथ ४ अद्भुत चित्र उपहार रूपमें दिए जाएंगे जिनका हर चित्रका मूल्य )॥ है। यह इनाम चैत्र शुक्ला १ सं० १९९६ से आषाढ़ शुक्ला १५ तक दिया जावेगा।

द्वारकाप्रशाद जैन
श्री महावीर जैन भण्डार
मालीवाड़ा देहली